अपराध का तरंग सिद्धान्त

तरंगिनी



प्रदीप कुमार

प्रकृति का उपयोग व उपभोग करना एवं उसका आनन्द लेना हमारा प्राकृतिक अधिकार है; प्रकृति के नियमों के बन्धन में रहना हमारा प्राकृतिक कर्तव्य है। वृक्ष हमें साँस लेने के लिऐ ऑक्सीजन देता है; नदी हमारी प्यास बुझाने के लिऐ जल लाती है; समाज हम एक ऐसा वातावरण एवं धरातल उपलब्ध कराने का प्रयास करता है जिस पर हम अपनी इच्छानुसार मनपसन्द किले का निर्माण कर सकें; हम बदले में वृक्ष, नदी और समाज को क्या लौटाते हैं? लेना और देना प्रकृति का नियम है। दूसरों के साथ वही करो जिसकी तुम दूसरों से अपने लिये अपेक्षा करते हो। यदि तुम किसी की सहायता करने के कर्तव्य से बाधित नहीं होना चाहते, तो तुम्हें किसी को हानि पहुँचाने का अधिकार ही किसने दिया है।
इसी पुस्तक से...

तरंगिनी

तरंगिनी

(अपराध का तरंग सिद्धान्त)

प्रदीप कुमार

भारती भाषा प्रकाशन
विश्वास नगर, दिल्ली-32

प्रकाशक : **भारती भाषा प्रकाशन**
592/16, सहदेव गली, विश्वास नगर
शाहदरा, दिल्ली-110032

प्रथम संस्करण : 2001

मूल्य : 100.00

शब्द-संयोजन : राजेश लेज़र प्रिंट्स
शाहदरा, दिल्ली-32

मुद्रक : पवन ऑफसेट, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32

अवयव

प्रस्तावना

इस पुस्तक में जो भी है, मेरा नहीं है। जो पिछले पन्द्रह खरब वर्षों से—जब से इस अन्तरिक्ष का जन्म होना वैज्ञानिक मानते हैं—मुझ तक पहुँचा है, उसी के एक अंश को मैंने अन्तरिक्ष में पुनः वापस करने का मात्र एक प्रयास किया है। साथ ही, कुछ मोती चुनकर कलात्मक स्तर पर अपराध दर्शन की एक ऐसी माला गूँथने की चेष्टा की है जिसमें अपराध का क्षेत्र, मूलभूत कारण, प्रक्रिया व अभौतिक पक्ष तथा अपराध से मुक्ति के मनके क्रमानुसार टँके हुए हैं।

मेरा आत्म शून्यता (पूर्णतः स्थिर अनिर्मित ऊर्जा), उन अभौतिक, अर्ध-भौतिक तथा भौतिक तथ्यों व घटनाओं जो इस परम शून्य से निर्मित हुईं, तथा अन्तरिक्ष में विद्यमान सभी वस्तुओं, प्रकारों व जीवित-अजीवित सभी अस्तित्वों के प्रति ऋणी है। मैं उनका भी आभारी हूँ जिन्होंने कभी भी किसी भी रूप में ऊर्जा का कम्पन रचनात्मक कार्यों के लिये किया है।

जिन व्यक्तियों ने इस पुस्तक के मूल विचार को यह रूप देने में मुझे सहयोग दिया है, उनका मैं विशेष रूप से आभारी हूँ। वे न केवल मेरे अस्पष्ट विचारों की धुँध को दूर करने में ही सदैव मेरे साथ रहे वरन् उन्होंने मेरे मस्तिष्क को अपने संशयों और मूल्यवान तर्कों से जगाये रखा।

कोई भी आदम इस संसार में हव्वा के सहयोग के बिना सेब का आनन्द नहीं ले सकता। इस कृति के रचित होने की सम्पूर्ण प्रक्रिया में मेरी धर्मपत्नी अलका ने न केवल सभी सांसारिक भौतिकताओं का भार ही अपने कन्धों पर लेकर मुझे सहयोग दिया वरन् अत्यन्त बौद्धिक रूप से की गयी अपनी समालोचना से वह पूरी रचना में समय-समय पर निखार लाती रहीं और उनके धनात्मक सहयोग के बिना मेरा यह सपना साकार होना कदापि सम्भव नहीं था।

—प्रदीप कुमार

उसे समर्पित

जो आज को आने वाले कल
की आँखों से नहीं देख रहा है।

भूमिका

जब भी मैं अपनी पुस्तकों की अलमारी खोलता हूँ तो मेरा तीन वर्षीय पुत्र उसमें रखी अपनी पहुँच में आने वाली सभी पुस्तकें निकालकर नीचे गिरा देता है और ऐसा करने में उसे आनन्द आता है। जब मैं भी ऐसा करता हूँ तो वह और प्रसन्न होता है परन्तु पुस्तकों को वापस अलमारी में नहीं रखता। आख़िर क्यों ? वह सुव्यवस्थित रूप से रखी वस्तुओं को कुव्यवस्थित करने में अधिक रुचि रखता है और इतनी छोटी-सी आयु में भी एक संस्थापित सुव्यवस्थता को कुव्यवस्थित करने में आनन्दित होता है। आख़िर ऐसा क्यों ? टूटे घर ? माता-पिता की उपेक्षा ? शिक्षा का बुरा प्रभाव ? वातावरण ? समाज ? परिस्थितियाँ ? *पूर्वजानुरूप प्रवृत्ति*[1] ? निर्धनता ? अपराध-शास्त्र के उपरोक्त वर्तमान किस सिद्धान्त की परिधि में उसके इस कार्य को लाया जा सकता है ? और यदि ऐसा है, तो वह अपनी पुस्तकों को क्यों नहीं कुव्यवस्थित करता ? इसके विपरीत, वह उन्हें पढ़ने के उपरान्त अपनी अलमारी में ठीक प्रकार से रख देता है। क्या उसकी इस विरोधात्मक प्रकृति का मूल कारण उसकी आन्तरिक अन्तर्निहित व स्वाभाविक प्रवृत्ति नहीं है जो उसके कार्य में परिलक्षित होती है ? और क्या यही प्रवृत्ति, अगर समय रहते दबा नहीं दी जाती है, समय आने पर उभरकर इस धरातल पर जनसंख्या के अनुपात से अधिक अनुपात में बढ़ रहे अपराध का मूल कारण बनने में सहायक नहीं होती है ?

किसी भी अपराध का कारण होता है। सभी अपराधों के पीछे एक मूलभूत कारण होता है क्योंकि कोई भी व्यक्तिगत अथवा सामूहिक परिणाम कुछ व्यक्तिगत अथवा सामूहिक कारणों का प्रभाव होता है और प्रत्येक व्यक्तिगत अथवा सामूहिक कारण किसी-न-किसी व्यक्तिगत अथवा सामूहिक परिणाम में परिणित होता है। दूसरे शब्दों में, एक कारण किसी परिणाम का कारण है जबकि एक परिणाम किसी कारण का परिणाम है। इसी प्रकार से, परमाणु की भाँति ही कारण और परिणाम यद्यपि मूल रूप से स्वतन्त्र होते हैं तथापि दोनों ही एक-दूसरे पर आश्रित रहते हैं। जैसा कारण होगा, वैसा ही परिणाम होगा; इसके बावजूद दोनों का पहचानने योग्य अपना अलग अस्तित्व है।

कारण और परिणाम के सिद्धान्त को अन्तरिक्ष की उत्पत्ति और निरन्तरता का

मूल आधार मानते हुए अरस्तू का विश्वास था कि किसी भी प्राकृतिक घटना के इस प्रकार से घटित होने के लिये कि उसकी अनुभूति ज्ञानेन्द्रियों द्वारा की जा सके, कारण के चार तत्त्व हैं–

1. प्रारूप, 2. तत्त्व, 3. प्रयत्न, और 4. अन्तिम रूप या परिणाम।

उदाहरणस्वरूप अपने सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए उनका कहना था कि घर बनाने का आशय या योजना प्रारूप है, घर बनाने हेतु सभी आवश्यक वस्तुओं को एकत्र करना तैयारी या तत्त्व है, वास्तुकार की घर बनाने की प्रक्रिया प्रयत्न है तथा घर का पूर्णरूपेण निर्मित हो जाना अन्तिम रूप या परिणाम है। चूँकि अपराध भी इन्हीं चारों कारण-स्तरों—आशय, तैयारी, प्रयत्न व कार्यान्वयन के मिलने पर ही घटित होता है, इसलिये मात्र यही तथ्य प्रथम दृष्टया यह स्थापित कर देता है कि अपराध सामाजिक अथवा वैधानिक नहीं, जैसा कि अब तक अपराध शास्त्री मानते आये हैं, वरन् एक प्राकृतिक घटना है।

अपराध के स्वतन्त्र रूप से घटित होने की प्रक्रिया में प्रथम तीनों स्तर अपने आप में पूर्ण होने पर चौथे स्तर—कार्यान्वयन—का निर्माण करते हैं। अर्थात् चौथा स्तर पहले तीनों स्तरों का संयोजन होता है और सभी स्तर अपने आप में स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हुए भी एक-दूसरे पर निर्भर रहते हैं। यदि प्रयास न हो तो कार्यान्वयन सम्भव नहीं होगा। इसी प्रकार से, तैयारी के स्तर को पूरा किये बिना कोई प्रयास सम्भव नहीं है और कोई तैयारी बिना आशय के पूर्ण नहीं हो सकती। अर्थात्, यदि दूसरे कारक स्थिर रखे जायें तो, कार्यान्वयन प्रयास का परिणाम है अथवा प्रयास कार्यान्वयन का कारण है। इसी प्रकार से, प्रयास तैयारी का परिणाम है अथवा तैयारी प्रयास का कारण है और, इसी दृष्टिकोण से, तैयारी आशय का परिणाम है अथवा आशय तैयारी का कारण है। कारण ओर परिणाम के सिद्धान्त के अनुसार, प्रत्येक परिणाम का कारण है और वह परिणाम, यदि अन्य कारक स्थिर हों तो, पुनः आगामी परिणाम के लिये कारण बन जाता है। अतः आशय, जो तैयारी का कारण है, का भी कोई कारण अवश्य ही होना चाहिए जिसका परिणाम वह आशय है। यदि ऐसा है तो क्या यह आवश्यक नहीं होगा कि ऐसे प्राकृतिक/दार्शनिक मूल कारण की—और अब तक के सामाजिक अथवा पारिस्थितिक कारण की नहीं—खोज की जाये जिसका परिणाम अपराध कारित करने का आशय है ?

एक फ़ैक्ट्री के प्रबन्धक ने छः सौ मीट्रिक टन सीमेण्ट की चोरी की प्रथम सूचना रिपोर्ट फ़ैक्ट्री के सुरक्षा अधिकारी के विरुद्ध लिखाई। अन्वेषण करने पर पता लगा कि प्रबन्धक के निर्देशानुसार क़ागज़ पर सीमेण्ट का उत्पादन वास्तविक उत्पादन से अधिक दिखाया गया और वित्तीय वर्ष के अन्त में क़ाग़जीय उत्पादन और वास्तविक उत्पादन के अन्तर को बराबर करने के उद्देश्य से उसे चोरी किया जाना लिखा दिया गया। क्या प्रबन्धक द्वारा एक ईमानदार और निर्दोष सुरक्षा अधिकारी को ऐसे

गम्भीर आरोप से आरोपित करने का प्रयास जिससे उसका जीवन नष्ट हो सकता था, अपराध नहीं था ? और यदि हाँ, तो ऐसे अपराध जिससे प्रबन्धक को स्वयं कोई भौतिक लाभ नहीं होने वाला था, के पीछे क्या मूल कारण था ? अपराध कारण का कौन-सा वर्तमान सिद्धान्त यहाँ पर लागू होगा ?

राजकीय कार्यकारिणी के एक ईमानदार वरिष्ठ अधिकारी ने 'कस्टम रेड' में छीने गये सोने के पन्द्रह बिस्कुट अपने लिये रख लिये। मामला किसी प्रकार खुल जाने पर उस अधिकारी को ऐसा खेद हुआ कि उसकी हृदय की गति बन्द होने से मृत्यु हो गयी। अपने अदोष कार्यकाल की सन्ध्या में उसे किस मूल कारण ने ऐसा कार्य करने के लिये प्रेरित किया जिसका पश्चात्ताप उसकी मृत्यु का कारण बना ?

अफ़ीम के नशे में एक अफ़ीमची ने रात में यह भ्रम किया कि उसकी उपस्थिति में उसकी पत्नी के साथ सामूहिक बलात्कार हो रहा है। यह मानते हुए कि वहे अपनी पत्नी की लज्जा बचा रहा है, उस अफ़ीमची ने उन काल्पनिक बलात्कारियों पर चाकू से प्रहार किये। प्रातःकाल उसने अपनी प्रिय पत्नी को नग्नावस्था में चाकू के घावों से मरा पाया और वह अपराध की संस्वीकृति करने स्वतः ही पुलिस स्टेशन चला गया। क्या ऐसा करते समय वह किसी आन्तरिक तरंग के *परोक्ष प्रभाव*[2] में नहीं था—एक ऐसी तरंग जो वातावरण में उसी प्रकृति की किसी बाह्य तरंग के अर्ध-चेतन मस्तिष्क के स्तर पर उसके द्वारा बोध करने से जागृत हो गयी हो ?

व्यवसाय और व्यवसायिक अपराधता जुड़वा हैं। तकनीकी धोखे का तथ्य सार्वभौम एवं प्रत्येक स्तर पर विद्यमान है। सायकिल बनवाने से टेलीविज़न क्रय करने तक के उपभोक्ता की तकनीकी अज्ञानता का अनुचित लाभ लालची प्रवृत्ति के व्यवसायी उठाते हैं। यहाँ तक कि कुछ अतकनीकी व्यवसायी भी पेट्रोल, कपड़ा आदि नापते हुए अथवा खानपान की वस्तुयें तौलते समय साधारण व्यक्ति को धोखा दे देते हैं। आकाश में इस प्रश्न की छाया अभी भी डोलती रहती है कि आख़िर ऐसा क्यों ?

समय-समय पर विभिन्न अपराध शास्त्रियों ने अपने स्तर से इस प्रश्न का उत्तर खोजने का प्रयास किया है। *'पॉज़िटिविस्ट'*[3], जो *नियतिवाद के सिद्धान्त*[4] को मानते हैं, ने किसी एक या दूसरे बाह्य कारण को अपराध घटित होने के लिये उत्तरदायी ठहराया जबकि *'क्लासिकलिस्ट'*[5], *स्वतन्त्र इच्छा के सिद्धान्त*[6] के प्रचारक, ने अपराध के कारणों को खोजते समय आन्तरिक कारणों पर अधिक बल दिया। इसके अतिरिक्त, 'पॉज़िटिव' स्कूल ने अपराध को सामाजिक स्तर पर परिभाषित करते हुए अपना ध्यान अपराधकर्ता पर अभिकेन्द्रित किया जबकि 'क्लासिकल' स्कूल ने अपराध की विधिक परिभाषा की व्याख्या करते हुए स्वयं अपराध की आख्या पर ही अधिक बल दिया। कुछ *आकृति-विशेषज्ञों*[7] और *कपाल-वैज्ञानिकों*[8] ने भी अट्ठारहवीं शताब्दी में अपराध का मूल कारण जानने का असफल प्रयास किया। पूर्वजानुरूपता के क्षेत्र में भी खोज की गयी। क्रोमोज़ोम्स के असामान्य सम्मिश्रण का सिद्धान्त भी अपराध घटित होने के

शाश्वत कारण को अपनी परिधि में बाँध नहीं सका। अपराध-कारण के जितने सिद्धान्तों की खोज होती गयी, इस भूलोक में मानव द्वारा बसाये गये सभी भागों पर अपराध की दरों में उतनी ही लगातार वृद्धि होती गयी।

कालक्रमानुसार, अपराध की आरम्भिक बूँद बहती धाराओं की अगिनत शाखाओं में विभाजित हो गयी है। विधिक और सामाजिक स्तर पर जहाँ एक ओर मान्यता प्राप्त या अमान्यता प्राप्त, व्यक्तिगत या सामूहिक और *बिना शिकार के*[9] अपराध हैं, वहीं दूसरी ओर चैतन्य, *अचैतन्य (अदण्डनीय)*[10], उपचैतन्य, सहचैतन्य, पराचैतन्य और नव-चैतन्य स्तरों के अपराधों का भी इस संसार में अस्तित्व है। प्रत्येक प्रकार के अपराध के लिये यद्यपि समाज अथवा परिस्थितियाँ भिन्न हो सकती हैं तथापि बिना किसी संशय के यह निश्चित है कि *होमोसेपियन*[11] ही वह कर्ता है जिसके द्वारा सभी अपराध कारित होते हैं। क्यों एक-सी ही परिस्थितियों का सामना करते हुए कुछ व्यक्ति आपराधिक सीमा के उस पार चले जाते हैं जबकि कुछ व्यक्ति ऐसा नहीं करते ? क्या मनुष्यों में आपराधिक प्रवृत्ति अन्तर्भूत एवं स्वाभाविक रूप से निहित नहीं होती ?

जब सामान्य अवस्था में खड़े होते हुए सत्यता का बोध नहीं होता है तो मनुष्य को सिर के बल खड़ा हो जाना चाहिए। विधि एवं अपराध को मात्र विधिक अथवा सामाजिक बन्धन मानने तथा परिस्थितियों और वातावरण पर ही अपराध घटित होने का मुख्य उत्तरदायित्व डालने से आपराधिक दैत्य का पोषण ही हुआ है। यहाँ तक कि ज्योतिषी, हस्तरेखा शास्त्री, संख्या शास्त्री, जन्मपत्री विशेषज्ञ आदि के अनुसार भी स्वतन्त्र-इच्छा भाग्य से वरिष्ठ है। अतः अपराध का मूल कारण और अपराधता का श्रोत व्यक्ति की संवेदनशील अथवा अनुबोधन क्षमता में ही नहीं वरन् उसके स्वभाव में खोजा जाना चाहिए। अपराध—*अन्तरिक्ष की व्यवस्था*[12] में कुव्यवस्था कारित करना—के कारण की खोज का क्षेत्र मानव की स्वाभाविकता में है।

सभी मिथक शास्त्रों और वैज्ञानिक दृष्टिकोणों, दोनों ही, के अनुसार *शून्यता*[13] (पूर्णतः अनिर्मित ऊर्जा) ही इस अन्तरिक्ष के निर्माण का मूल स्रोत रही है। इसलिये प्रकृति की प्रत्येक घटना अथवा तथ्य के कारित होने का मूल स्रोत भी इसी शून्यता में है। इस सघन स्थूलकाय भौतिकीय अन्तरिक्ष से परे विचारों, अनुभूतियों, मनोभावों, प्रवृत्तियों और इच्छाओं का सूक्ष्मतर स्तर का एक अर्ध-निराकार अन्तरिक्ष बसा हुआ है; और इस अन्तरिक्ष से भी परे उस परम आत्मा का निवास है जो सभी की रचयिता है। जिस प्रकार से *एल्गी*[14] में सम्पूर्ण वनस्पति जगत् और *अमीबा*[15] में समस्त जन्तु जगत् सोया रहता है, वर्षा बादलों में घुली रहती है और सम्पूर्ण अन्तरिक्ष माँ की कोख में विश्राम करता है, उसी प्रकार से अपराध का मूल कारण आत्मा में सुषुप्तावस्था में सदैव विद्यमान रहता है—वह आत्मा जो अकम्पनशील अनिर्मित ऊर्जा के रूप में मुझ में, आप में और सब में है।

विधि और अपराध सामाजिक अथवा वैधानिक नहीं वरन् प्राकृतिक तथ्य हैं

सदियों से इस अन्तरिक्ष की सम्पूर्ण आत्मकथा अन्तरिक्षीय-तापीय सतह पर *तरंगों की अमीबिक जैविक घड़ी*[1] के सीधी रेखा, वृत्तीय और सर्पिल रूप में चलायमान रहने की कथा रही है। सम्पूर्ण प्रकृति—*समय, दूरी और कारणत्व का प्रथम बन्धन*[2]—*कम होते तापक्रम*[3] पर कम्पन (ऊर्जा) द्वारा अनिर्मित शून्य (ऊर्जा) के अभौतिक (ऊर्जा), अर्ध-भौतिक (ऊर्जा) तथा भौतिक (ऊर्जा) रूपों का लयबद्ध निर्माण है। *अन्तरिक्ष की कोख*[4] के चारों ओर घूमती हुई आकाशगंगायें जो विभिन्न प्रकार के तारों, ग्रहों और उपग्रहों से अलंकृत हैं, *अन्तरिक्षीय रेगिस्तान*[5] के महासागर में हरितिमा के रूप में सुशोभित हैं। अन्तरिक्षीय गति के मध्य प्रलम्बित प्रकृति ऊर्जा के एक प्रकार से दूसरे प्रकार में हो रहे अनेकानेक परिवर्तनों एवं परिवर्धनों की स्वयंभू साक्षी है।

[अनिर्मित ⇌ निर्मित ⇌ अभौतिकीय ⇌ अध-भौतिकीय ⇌ अकार्बनिक ⇌ कार्बनिक ⇌ अजीवित ⇌ सजीव ⇌ ऐकिक ⇌ जटिल]

यह सब क्रमबद्ध रूप से हुआ—और अभी भी हो रहा है—और इसके परिणामस्वरूप एक अतुलनीय, अनन्त, चिरजीवी अन्तरिक्षीय व्यवस्था स्थापित हुई। इस व्यवस्था की भ्रूणावस्था में ही *प्रकृति के नियम*[6] चलायमान हो गये। इन्हीं नियमों को प्रारम्भिक शून्यता के *सर्वोच्च स्तर के जीवित निर्माण*[7] ने पहले देखा, परखा और आत्मसात् किया, और फिर उन्हें अपना कर उनका निरादर किया।

प्रकृति की विभिन्न घटनाओं से सम्बद्ध अन्तरिक्षीय बलों का विभिन्न रूपों में गतिमान होना देखते-परखते हुए मनुष्य ने अन्तरिक्षीय घटनाओं की क्रमानुसार पुनरावृत्ति का बोध किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि प्राकृतिक घटनाओं की एकरूपता अथवा समरूपता *वृत्ताकार*[8] है और सभी प्राकृतिक घटनायें एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं। इससे मनुष्य ने यह निष्कर्ष निकाला कि प्रकृति में पुनरावृत्ति भी अत्यन्त ही सुव्यवस्थित प्रकार से होती है। प्राकृतिक घटनाओं में हो रहे अनवरत परिवर्तनों के एकत्र किये अनुभवों की अनुभूति होने से तथा उनका विश्लेषण करने से मनुष्य को विधि की जानकारी प्राप्त हुई। इस दर्शन का प्रथम विचारक कि न केवल प्रकृति वरन् सम्पूर्ण अन्तरिक्ष भी एक निश्चित अन्तरिक्षीय विधि एवं व्यवस्था के मौन आधिपत्य में है,

अन्तरिक्ष में विद्यमान सर्वप्रथम विधि—प्राकृतिक विधि—का सर्वप्रथम खोजी था।

यहाँ तक कि अबोध अन्तरिक्ष भी कुछ मूलभूत नियमों और सिद्धान्तों के अधीन एवं नियन्त्रण में था। इन नियमों ने न केवल सभी खगोलीय पिण्डों का निर्माण ही नियन्त्रित किया वरन् उनकी अपने-अपने पथ पर गतिशीलता बनाये रखने में भी विशेष भूमिका निभाई। उन विशालकाय पिण्डों के प्रकार और उनके बीच कार्य कर रहे आकर्षण एवं प्रत्याकर्षण बलों में समरूपता बनाये रखने का कार्य भी प्रकृति के इन्हीं प्रारम्भिक नियमों ने किया। इसलिये प्रकृति के नियम प्राकृतिक निर्माण, प्राकृतिक गतिविधि और प्राकृतिक बन्धनों के मूल नियम हैं। तापमान के मापक्रम पर स्वयं प्रकृति भी समय, दूरी और कारणत्व के नियमों से बाधित एवं शासित है। प्रत्येक परमाणु, अणु और मिश्रण की संरचना एवं प्रकृति के अपने नियम हैं। इसी प्रकार से, ऊर्जा के रूपान्तरण एवं पुनर्रूपान्तरण के अवलोकन एवं विवेचन के आधार पर प्रकृति के एक अन्य महत्त्वपूर्ण नियम—परिवर्तन—की खोज हुई। प्राकृतिक रूप में हुए परिवर्तन ने यद्यपि तत्कालीन प्राकृतिक व्यवस्थाओं के स्थान पर अन्य प्राकृतिक व्यवस्थाओं की संरचना की तथापि कभी-कभी प्राकृतिक दुर्व्यवस्थायें भी संरचित हुईं, जैसे कि प्रकृति ने स्वयं ही अपने नियमों का उल्लंघन किया हो।

मूल तत्त्वों[9] (क्षिति, जल, अग्नि, वायु और शून्य) का एक विशेष व्यवस्थित रूप में परिलक्षित होना जीवन और कुव्यवस्थित हो जाना मृत्यु का द्योतक है। एकीकृत अन्तरिक्षीय व्यवस्था के माध्यम से अभौतिकता से सूक्ष्मतम अजैविक भौतिक रूप में परमाणु का जन्म हुआ और सूक्ष्मतम सजीव भौतिक रूप में जीवित कोशिका का जन्म हुआ जिसके भीतर अन्तरिक्ष की सम्पूर्ण कार्यशीलता अन्तर्निहित थी। आनुवांशिक रूप से, व्यक्ति के *फ़ीनोटाइप*[10] गर्भाधान से उसकी मृत्यु होने तक *जीनोम*[11] और वातावरण के मध्य हुई मिश्रित प्रक्रिया के उत्पाद होते हैं। आस-पास का वातावरण *जीनोटाइप*[12] पर भी अपना प्रभाव डालता है। इसलिये अपने विकास की प्राकृतिक प्रक्रिया में समस्त प्राकृतिक घटनाओं को अपने में समावेशित करते हुए जीवित कोशिका, जो आरम्भ में संरचना और कार्यप्रणाली के आधार पर कार्बनिक मिश्रण की मात्र एक जीवित इकाई थी, ने प्रकृति में विद्यमान सभी कार्यकलापों को समयानुसार प्रदर्शित करना प्रारम्भ कर दिया। विभिन्न प्रकार के खनिजों और मिश्रणों से वनस्पतियों और जन्तुओं का उद्भव एवं विकास हुआ। विकास की इस स्वतः प्रक्रिया का अन्तिम परिणाम मनुष्य हुआ जिसमें खनिज, वनस्पति और जन्तु जगत् के भौतिकीय, अर्ध-भौतिकीय और अभौतिकीय सभी *धनात्मक, ऋणात्मक और मध्यम*[13] बलों का सम्मिश्रण था। प्रकृति द्वारा मनुष्य को अपनी कोख में वहन करने की अनुभूति एवं अनुभव प्रकृति के समस्त अनुभवों में सबसे अनोखी और मूल्यवान अनुभूति एवं अनुभव रहा होगा।

मनुष्य इस ग्रह पर प्रकृति का व्यक्ति स्वरूप अवतार है। मनुष्य स्वरूप इस

लघु अन्तरिक्ष में प्रकृति की सारी घटनायें प्रतिबिम्बित होती हैं, यद्यपि वे विभिन्न व्यक्तियों में विभिन्न अंशों और कोणों में विद्यमान होती हैं। यदि ग्रीष्म ऋतु न होती तो मनुष्य ने क्रोध करना न सीखा होता। वर्षा ऋतु ने हमें रोना सिखाया और वसन्त ने प्रसन्नता। रक्त से भरी आज की धमनियाँ और शिरायें कल की *फ़्लोयम और ज़ाइलम*[14] हैं। क्या शरीर के भीतर उठने वाले विभिन्न प्रकार के चक्रवात और वायु के भँवर ठीक उसी प्रकार के नहीं हैं जैसे कि बाहर के चक्रवात और वायु के भँवर हैं ? क्या शरीर के रक्त-चाप के ज्वार-भाटे सामुद्रिक ज्वार-भाटे से भिन्न हैं ? क्या हमारी शरीर के सर्वाधिक विकसित स्नायु-तन्त्र की दस सहस्त्र खरब कोशिकायें हमारी आकाशगंगा में स्थित तारों की संख्या से तुलनात्मक स्तर पर समान नहीं हैं ? क्या हमारी त्वचा पर निकला हुआ फोड़ा एक सूक्ष्म ज्वालामुखी और फुँसी एक छोटे पर्वत के समान नहीं हैं ? क्या मानवीय इच्छा उत्पन्न करने वाली तरंगें समुद्र के किनारों से खेलती तरंगों से समानता नहीं रखतीं ? क्या जीवित कोशिका के भीतर कार्यरत *बलों का सन्तुलन*[15] अन्तरिक्ष के बलों के सन्तुलन में परिवर्तन होने से प्रभावित नहीं होता ? *आन्तरिक दुनिया*[16] और *बाह्य दुनिया*[17] की क्रियाओं, प्रतिक्रियाओं और प्रति-प्रतिक्रियाओं में परस्पर सामन्जस्यता है।

सोलहवीं शताब्दी में चुम्बकत्व के खोजी विलियम गिल्बर्ट ने पदार्थ में विद्युत का गुण होना अवलोकित किया। निःसन्देह, यह विद्युत अभौतिकीय विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र का प्राकृतिक घटक थी जिसमें धनात्मक, ऋणात्मक और मध्यम तीनों गुण विद्यमान थे। 1720 ई. में स्टीफ़न ग्रे ने खोज की कि मानव शरीर विद्युतीय लक्षण प्रदर्शित करता है और विद्युतीय प्रेरण दिये जाने पर प्रतिक्रिया दिखाता है। अंगुली में ऊष्मीय संवेदन प्रेरित करने पर वह विद्युत रासायनिक तरंगों के पथ द्वारा माध्यम को रूपान्तरित किये बिना ही मस्तिष्क तक प्रसारित हो जाता है। दर्द की अनुभूति भी उसी प्रकार की यन्त्र-रचना की प्रक्रिया द्वारा मस्तिष्क को होती है। मानव-शरीर में उपस्थित पाँच धनात्मक विद्युत धारायें पाँचों ज्ञानेन्द्रियों का कार्य-नियन्त्रित करती हैं, पाँच ऋणात्मक विद्युत प्रवाह पाँचों संवेदन पदार्थों अथवा वस्तुओं को तथा पाँच मध्यम विद्युत धारायें पाँचों कर्मेन्द्रियों (स्वर, उत्पादन, गति, उत्सर्जन और मानवीय निपुणता—हाथ) को नियन्त्रित करती हैं। धनात्मक और ऋणात्मक विद्युत प्रवाहों में अन्तःक्रियायें—क्रमानुसार, संवेदन के पदार्थ और अंग—विभिन्न प्रकार की मध्यम विद्युत धाराओं को उत्पादित करती हैं जो विभिन्न मनुष्यों में विभिन्न प्रकार और प्रारूप के ऐक्छिक एवं अनैक्छिक कार्यों को संचालित करती हैं। क्या विद्युत का यह प्रारम्भिक नियम कि तुम जैसा बोध करोगे, वैसी ही प्रतिक्रिया प्रदर्शित करोगे, औसत और सन्तुलन के प्राकृतिक नियम के समरूप नहीं है ? क्या प्राकृतिक चयन और योग्यतम की उत्तरजीविता के जो नियम प्रकृति को संचालित करते हैं, वही नियम जीवित कोशिकाओं, ऊतकों और अंगों की *चयापचयता*[18] को नियन्त्रित नहीं करते ?

क्या आन्तरिक जीवन के मूल नियम—जैसे कि प्रत्येक क्रिया के समान एवं विपरीत उसकी प्रतिक्रिया होती है, प्रत्येक़ वस्तु का अस्तित्व किसी अन्य वस्तु से सम्बन्धित रहते हुए ही सम्भव है (सम्बद्धता का नियम) आदि—प्रकृति के नियमों के अनुरूप नहीं हैं ?

मानव शरीर, प्रकृति का अन्तिम उत्पाद, प्रकृति के नियमों द्वारा ठीक उसी प्रकार से अपने आपको शासित करता है जिस प्रकार से प्रकृति स्वयं को शासित करती है। शरीर, मस्तिष्क और आत्मा का अनुरक्षण सहजता है तथा इसी त्रिक में कुव्यवस्था हो जाना असहजता अथवा रोग की निशानी है। कॉज़्मेटिक्स के प्रयोग से प्राकृतिक रूप से व्यवस्थित आन्तरिक सुव्यवस्था में कुव्यवस्था उत्पन्न हो सकती है जिससे विभिन्न प्रकार के चर्मरोगों व अन्य रोगों को बढ़ावा मिलता है। आन्तरिक नियमों का उल्लंघन करने पर मनुष्य को प्रकृति द्वारा दण्डित किया जाता है; दण्ड की मात्रा उल्लंघन की प्रकृति, प्रकार और प्रसार पर निर्भर करती है। प्रकृति द्वारा दण्ड देने की अपनाई गयी प्रक्रिया *प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्तों*[19] पर आधारित रहती है। किसी रोग के वास्तविक आक्रमण के पूर्व अर्थात् उल्लंघन करने वाले को वास्तविक रूप से दण्डित करने के पूर्व प्रकृति उल्लंघनकर्ता को नियमानुसार सूचना देती है। इसके साथ ही वह उल्लंघनकर्ता को अपनी कुव्यवस्था को सुव्यवस्थित करने हेतु *समुचित एवं पर्याप्त अवसर*[20] देती है। प्रकृति *पक्षपात*[21] भी नहीं करती है। जो अपने *आन्तरिक प्राकृतिक नियमों*[22] का उल्लंघन करते हैं उन्हें प्रकृति दण्डित करती है; जो इन नियमों का नियमित रूप से अनुपालन करते हैं उन पर प्रकृति प्राकृतिक प्रसन्नता की वर्षा करती है।

यह प्रकृति का नियम है कि *ऋणात्मकता*[23] में चक्रविधि ब्याज के रूप में प्रसार होता है तथा *धनात्मकता*[24] अत्यन्त ही धीमी गति से गतिशील रहती है। यदि कोई रोग ठीक हो जाता है तो इसके बाद उसी रोग का दूसरा आक्रमण, यदि हो तो, पहले आक्रमण की अपेक्षा अधिक गम्भीर रूप से होता है। जब मनुष्य को आन्तरिक नियमों के उल्लंघन के लिये प्रकृति द्वारा दण्डित किया जाता है तो क्या उसे बाह्य जगत् में विद्यमान प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन करने पर प्रकृति द्वारा क्षमा कर दिया जायेगा ? क्या वह अन्तरिक्ष की प्राकृतिक व्यवस्था का उल्लंघन करके उसमें विकार उत्पन्न करने के लिये उत्तरदायी नहीं होगा ? किसी भी प्रकार की प्राकृतिक व्यवस्था, चाहे वह *आन्तरिक हो अथवा बाह्य*[25], का उल्लंघन अपने निर्धारित समय में अवश्य ही प्रतिकारित होता है।

समाज—हम उसे जिस रूप में मान्यता देते हैं—का निर्माण मादा के चारों ओर शिशुओं के एकत्र होने पर आरम्भ हुआ। मादा ने प्रजनन (उत्पादन) और देखरेख तथा नर ने भरण-पोषण तथा सुरक्षा का कार्यभार ग्रहण किया। यद्यपि *तन्त्रिका विन्यास का विकास*[26], जिसके कारण सूचनाओं का एकत्रीकरण और उनका

पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तानान्तरण सम्भव हो सका, प्राइमेट वर्ग के होमो गण में उस सदस्य में अग्रसर हुआ जो संकेत और चिह्न प्रदर्शित करने के योग्य था, चींटियों में पारस्परिक सहयोग और मधुमक्खियों में श्रम के विभाजन के रूप में समाज पहले भी अस्तित्व में था। यह प्राकृतिक विकास का नियम है कि सूचना के एकत्रीकरण, योग तथा हस्तानान्तरण की योग्यता विकास के प्रत्येक मंच पर स्थित सर्वोच्च स्तर में ही रही; बाकी स्तरों का यद्यपि अस्तित्व रहा तथापि सूक्ष्मस्तरीय परिवर्तन के अतिरिक्त उनका स्तर स्थिर एवं निर्धारित रहा। भेड़िये स्थाई समूह बनाकर रहते हैं और नर एवं मादा दोनों ही शैशवों को भोजन देते हैं। लेमूर और हेपालेमूर अत्यन्त ही सामाजिक प्राणी हैं।

बैबून प्राणियों ने अपने समाज को सुरक्षित और बनाये रखने के लिये अपने शैशवों के लिये विभिन्न प्रकार के कई शाब्दिक और अन्य प्रकार के संकेतों का आविष्कार एवं चयन किया और अपने समकालीन प्राणियों की अपेक्षा वे अधिक सामाजिक प्राणी रहे। समाज ने भी प्रत्येक श्रेणी के प्राणियों पर *चयन की आवश्यकता*[27] का प्रभाव डाला क्योंकि रात्रिचर प्राइमेट्स की अपेक्षा दिनचर प्राणी अधिक यूथचारी एवं सामाजिक रहे। इसलिये प्रत्येक प्राणी किसी-न-किसी प्रकार के समाज में रहा क्योंकि कुछ-न-कुछ सामाजिक पारस्परिक क्रिया जीवों की सभी जातियों और वर्गों में रही। मनुष्य की सामाजिक पारस्परिक क्रियायें मानव संस्कृति के नियमों से अनुबंधित हुईं।

मानव समाज का बीज सर्वप्रथम मनुष्य के मस्तिष्क में अंकुरित हुआ और तत्पश्चात धरती पर उगा। सभी सामाजिक संस्थायें मनुष्य द्वारा सार्वभौम रूप से पृथ्वी पर स्थापित करने के पूर्व उसके अन्तःमन में सुषुप्तावस्था में विद्यमान थीं। रोग से निदान, चिकित्सा से चिकित्सक और दोषी से न्यायाधीश तक सम्पूर्ण समाज हमारे भीतर है। सम्पूर्ण मानवीय समाज मनुष्य का प्रतिबिम्ब है और मनुष्य प्रकृति की प्रतिकृति है, इसलिये समाज मनुष्य और प्रकृति के बीच हुई पारस्परिक क्रियाओं का परिणाम है। इसलिये, क्या कोई सामाजिक व्यवस्था प्राकृतिक व्यवस्था के प्रतिकूल हो सकती है ? क्या सामाजिक नियम प्राकृतिक नियमों के अधिकार-क्षेत्र से परे हो सकते हैं ? क्या प्रकृति के नियमों अथवा मानदण्डों के विरुद्ध किये गये विधिक नियमों अथवा सामाजिक मानदण्डों का निर्माण अन्तरिक्षीय व्यवस्था में कुव्यवस्था उत्पन्न नहीं करेगा ? जो स्वयं प्रकृति के नियमों के अनुरूप नहीं ढलता अथवा जो प्रकृति के नियमों को नहीं अपनाता, वह शीघ्र ही विलुप्त हो जायेगा। जो *प्राकृतिक संकेतों और चिह्नों*[28] का अनुपालन अपने जीवन में *पराचेतना के स्तर*[29] पर करेगा, वही उत्तरजीविता के आधार पर आने वाली अगली परामानव पीढ़ी का पिता होगा।

मनुष्य की प्राचीनतम, और मूल रूप से प्राकृतिक, दोनों इच्छायें भूख और सेक्स हैं। जब दो विपरीतलिंगी सहमतिपूर्वक खाने की मेज़ के साझेदार हो सकते हैं

तो वे सहमतिपूर्वक शयनकक्ष की साझेदारी क्यों नहीं कर सकते ? दो धनात्मक अथवा ऋणात्मक विद्युत आवेश एक-दूसरे को प्रतिकर्षित तथा एक धनात्मक व एक ऋणात्मक आवेश एक-दूसरे को आकर्षित करते हैं। तब क्या समलैंगिकता अप्राकृतिक नहीं है ? क्या मनोवैज्ञानिक रूप से रोग के रूप में मान्यता प्राप्त इस मानसिक कुव्यवस्था को विधि निर्मित करके सामाजिक स्तर पर वैधता प्रदान करना प्राकृतिक व्यवस्था में कुव्यवस्था उत्पन्न नहीं कर देगा ? क्या वस्त्र ने हमारे भीतर के पशु को सुधारा, या क्या उसने हमारे नेत्रों को दूषित नहीं कर दिया ? पाखण्डपूर्ण शालीनता के धनुष पर रखकर दिशाहीन तीर के समान प्रकृति से दूर फेंकने के अतिरिक्त इस वस्त्र ने और किया ही क्या है ? किसी शेर ने कभी लंगोटी नहीं पहनी; कृपया मुझसे प्राकृतिक रूप में मिलें, मैं अपने कलुषित नेत्र स्वच्छ करना चाहता हूँ।

सामाजिक मानदण्डों और रुचियों में स्वयं में प्रतिकूलता है इसलिये विधि समाज एवं सामाजिक स्थापनाओं के स्तर पर बने सामाजिक मानदण्डों एवं रुचियों से सम्बन्धित नहीं की जा सकती और न ही उसका उद्गम इनमें हो सकता है। प्रकृति में फिर भी स्थिरता है, अतः मानव जाति के परिरक्षण और निरन्तरता के लिये विधि का मूल स्रोत प्रकृति से प्राप्त करना अधिक प्राकृतिक होगा। वयः सन्धि के साथ ही मानव-शरीर अपनी मूल जैविक आवश्यकता को सन्तुष्ट करने की प्राकृतिक क्षमता प्राप्त कर लेता है। कोई भी विधिक अथवा सामाजिक व्यवस्था जो इस आवश्यकता की पूर्ति में और विलम्ब होने का कारण बने, प्राकृतिक व्यवस्था के विरुद्ध है। ऐसा होने से मनोवैज्ञानिक और शारीरिक स्तर पर विभिन्न प्रकार की कुव्यवस्थाओं के जन्म लेने और पनपने की सम्भावना सदैव रहती है। सामाजिक न्याय के सिद्धान्त प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्तों के विरुद्ध नहीं हो सकते। *आन्तरिक नियमों*[30] अथवा अन्तरिक्ष के नियमों के विरुद्ध बनाये गये विधिक अथवा सामाजिक नियम अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकते। या तो वे सुषुप्तावस्था अथवा मृतप्रायः अवस्था में पड़े रहते हैं या उनका सामूहिक रूप से उपहास किया जाता हे। कोई भी *चलयक्ष विमान*[31] किसी पक्षी के समान कभी भी नहीं हो सकता।

जब मद्य की बिक्री पर कोई रोक नहीं है तो एल. एस. डी., स्मैक, हेरोइन आदि की बिक्री पर रोक क्यों ? और यदि इस पर प्रतिबन्ध इनके उपयोग करने पर होने वाले हानिकारक प्रभाव के कारण है तो मद्य पर भी ऐसा प्रतिबन्ध क्यों नहीं है ? नशीले पदार्थों के साथ भेद-भाव भरा किया गया यह व्यवहार क्या प्रकृति के उन नियमों के विरुद्ध नहीं है जो सभी प्रकार के विष को एक ही तुला पर तौलते हैं ? क्या शिक्षा एवं सेवा में आरक्षण के नियम *प्राकृतिक चयन*[32] और योग्यतम की *उत्तरजीविता*[33] के नियमों के विरुद्ध नहीं हैं ? क्या सामाजिक स्वीकृति के आधार पर बनाया गया यह नियम कि विवाहित बलात्कारी की पत्नी को इस आधार पर दोषी ठहराया जायेगा कि वह अपने पति की असामान्य इच्छा की तुष्टि नहीं कर सकी,

अप्राकृतिक नहीं होगा ? वायु और जल प्रदूषण को रोकने के लिये, वनों को बचाने के लिये और लुप्तप्रायः पक्षियों और जन्तुओं की नस्लों को सुरक्षित रखने के लिये भौगोलिक स्तर पर नियम बनाये गये हैं। कुछ राष्ट्र दूसरे ग्रहों से आने वाले धातु/अधातु के नमूनों के व्यवसाय को अधिनियमों का निर्माण कर रोकने की योजना बना रहे हैं। भारतीय दण्डसंहिता की धारा-304ब के अन्तर्गत दहेज मृत्यु को कुछ विशेष परिस्थितियों में हुई अप्राकृतिक मृत्यु के रूप में परिभाषित किया गया है। विधि-निर्माण के क्षेत्र में प्रकृति पहले ही प्रवेश कर चुकी है। विधि और नियमों का प्रभावी निर्माण और उन्हें लागू किया जाना तभी सम्भव है जब विधि को विधिक अथवा सामाजिक तथ्य या घटना नहीं वरन् प्राकृतिक तथ्य या घटना माना जाये। मूल रूप से विधि सदैव प्राकृतिक होती है और जो अप्राकृतिक है, यह विधि हो ही नहीं सकती।

ग्रहों, उपग्रहों और तारों के बीच सन्तुलित-तनाव अन्तरिक्ष की निरन्तरता बनाये रखने हेतु आवश्यक है। ऐसा ही मनुष्य और मानवीय क्रियाओं की निरन्तरता के लिये है। परन्तु अत्यधिक तनाव शरीर में *एडरीनलिन*[34] आदि रसायनों के अधिक स्राव के कारण गैसीय *अल्सर*[35], *स्नायु-रोग*[36], *अति तनाव*[37] आदि कुव्यवस्थाओं को जन्म देता है। अप्राकृतिक जीवन व्यतीत करने वालों को हृदय रोग होने की सम्भावना अधिक होगी; हृदय की कुव्यवस्था *अनिद्रा रोग*[38], *गठिया*[39], *मधुमेह*[40] आदि रोगों को जन्म दे सकती है। विक्षिप्तता और कुछ नहीं, केवल मानसिक कुव्यवस्था है। उसका परिणाम क्या होगा जिसका कारण अन्तरिक्षीय कुव्यवस्था होगी ? क्या अभी भी हम अन्तरिक्षीय विक्षिप्तता की ओर बढ़ रहे अपने क़दमों को रोक सकेंगे ?

मानव-शरीर के प्राकृतिक नियमों का यद्यपि उल्लंघन या अतिक्रमण किया जा सकता है तथापि उनका अस्तित्व मिटाया नहीं जा सकता। यदि ऐसा कर दिया जाये तो मानव-शरीर के पूरे अस्तित्व का तुरन्त ही अन्त हो जायेगा और जीवन शेष नहीं रहेगा। इसी प्रकार से, प्राकृतिक व्यवस्था के प्राकृतिक नियमों का भी यद्यपि छोटी कुव्यवस्थाओं द्वारा उल्लंघन या अतिक्रमण किया जा सकता है तथापि इनमें से किसी भी नियम के विनाश से तुरन्त ही सम्पूर्ण अन्तरिक्षीय व्यवस्था टूट जायेगी और एक अकल्पनीय अन्तरिक्षीय अन्ध-व्यवस्था उत्पन्न हो जायेगी। यद्यपि उल्काओं और उल्का पिण्डों से अन्तरिक्षीय बलों के सन्तुलन में आंशिक परिवर्तन होता है तथापि उसमें किसी प्रकार का असन्तुलन अथवा कुव्यवस्था नहीं होती। बलों की व्यवस्था एवं पुनर्व्यवस्था प्रकृति का नियम है। परन्तु किसी के भी द्वारा किया गया कोई भी कार्य या भूल, जिसका आशय अन्तरिक्ष या प्रकृति में किसी भी प्रकार की, किसी भी रूप में, किसी भी सीमा तक तथा किसी भी परिस्थिति में कोई भी कुव्यवस्था उत्पन्न करना हो, प्रकृति के विरुद्ध अपराध होगा। चूँकि प्रकृति अपना प्रतिबिम्ब मनुष्य में भी प्रदर्शित करती है, इस प्रकार का कार्य अथवा भूल मनुष्य और मानवता के विरुद्ध

भी अपराध होगा। जिसने भी सूक्ष्मतम स्तर पर और सूक्ष्मतम प्रकार से भी प्रकृति के नियम को भंग करने का अथवा उसमें कुव्यवस्था उत्पन्न करने का मात्र वैचारिक स्तर पर ही सर्वप्रथम प्रयास किया, वही अपराध का आविष्कारक था। आदम ने सेब खाया था और हमारे दाँतों में अभी भी दर्द होता है।

यह कुव्यवस्था विचार, कथन, कार्य या भूल किसी के भी द्वारा की जा सकती है। किसी भी वस्तु, शब्द, विधि, समाज, तथ्य अथवा घटना का प्राकृतिक व्यवस्था के समरूप होना अच्छाई है, उसके विषमरूप होना बुराई है—अतः अपने आप में अपराध है। अगर किसी की गम्भीर रोग के कारण असमय मृत्यु हो जाती है तो यह मृत्यु प्राकृतिक है क्योंकि उस व्यक्ति के शरीर रूपी गोदाम में उपलब्ध सम्पूर्ण ऊर्जा प्राकृतिक रूप से समाप्त हो गयी। यदि किसी व्यक्ति की हत्या की जाती है तो यह ऊर्जा का अप्राकृतिक रूप से ह्रास होने के कारण अपराध होगा। इसलिये समरूपता का आभास होना समरूपता होने से भिन्न है। *प्राकृतिक व्यवस्था में उन्नति करना अच्छाई है, उसमें अवनति करना बुराई है।*[41] इसी प्रकार से, व्यवस्था में परिवर्तन सदैव ही कुव्यवस्था नहीं होगी। शरीर में शिरा का मार्ग थोड़ा बदल जाना व्यवस्था में परिवर्तन है; पल्योनरी शिरा में रक्त के प्रवाह की दिशा हृदय से फेफड़े की ओर हो जाना कुव्यवस्था है। अधिकतम संख्या में प्राकृतिक रूप से अधिकतम अच्छाई करने के आशय से व्यवस्था में लाया गया परिवर्तन कुव्यवस्था नहीं है—अतः अपराध भी नहीं है। एक सन्त सदैव सच बोला करता था। एक दुष्ट व्यक्ति यह स्थापित करने के लिये कि सन्त झूठा भी है, उसके पास एक सभा में अपनी मुट्ठी में एक जीवित पतंगा लिये आया और उससे पूछा कि वह पतंगा जीवित था अथवा नहीं। सन्त ने सोचा कि यदि वह सत्य बोलेगा तो वह व्यक्ति यह सिद्ध करने के लिये कि सन्त झूठ बोलता है, मुट्ठी दबाकर पतंगे को मार डालेगा। इसलिये सन्त ने कहा कि पतंगा मरा हुआ है। वह व्यक्ति हँसा और उसने पतंगे को जीवित उड़ा दिया। कल्याण में सच्चाई से भी अधिक गुरुत्व है।

नेप्चून ग्रह को विस्फोट करके तोड़ देना किसी भी विधिक अधिनियम के अन्तर्गत दण्डनीय नहीं है। परन्तु यदि मैं ऐसा करूँ तो क्या यह अपराध नहीं होगा ? क्या *चाँद पर ऑक्सीजन बनाने*[42] के लिये उसकी भीतरी पर्तों से खनिजीकरण द्वारा *इल्मेनाइट*[43] निकालने की प्रक्रिया बलों की अन्तरिक्षीय व्यवस्था को अस्त-व्यस्त नहीं कर देगी ? क्या वृक्षों को इतना अधिक काटना कि बचे वृक्षों की संख्या आवश्यक वृक्षों की संख्या से भी कम हो जाये, प्राकृतिक व्यवस्था के विरुद्ध नहीं होगा ? समाज में कुव्यवस्था फैलाकर कुछ प्राप्त करने की इच्छा करना अपराध है। क्या एक जाति का दूसरी जाति पर शासन करना अपराध नहीं है ? बल के नियम कभी-कभी उपयुक्त नहीं भी हो सकते हैं परन्तु उपयुक्तता के नियम कुछ समय तक हो सकता है सुषुप्तावस्था में रहें, अन्त में बलवान ही होते हैं। प्रकृति का नियम योग्यतम की

उत्तरजीविता है, न कि योग्यतम द्वारा दमन अथवा अधीनीकरण; और उत्तरजीविता के लिये दमन अथवा अधीनीकरण कदापि आवश्यक नहीं है।

पारस्परिक प्रतिस्पर्धा के कारण जहाज के कप्तान ने मद्यपान करने वाले नेवीगेटर के लिये लॉग बुक में लिखा, "कल रात नेवीगेटर मद्यपान किये हुए था।" आपत्ति करने पर कप्तान ने कहा कि उसने केवल सच्चाई लिखी है। अगले दिन लॉग बुक लिखने की बारी आने पर नेवीगेटर ने मद्यपान न करने वाले कप्तान के लिये लिखा, "कल रात कप्तान मद्यपान नहीं किये हुए था।" आपत्ति करने पर नेवीगेटर ने कहा कि उसने केवल सच्चाई लिखी है। सच्चाई बताने का आशय सच्चाई से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। प्राकृतिक व्यवस्था की निरन्तरता बनाये रखने में की गयी साशय भूल—कर्तव्य की उपेक्षा—भी निष्क्रिय अपराध है। यद्यपि आशय प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष दोनों ही हो सकता है तथा केवल उसी के आधार पर किसी कार्य की प्रकृति अच्छी या बुरी होने का निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। भारतीय दण्ड संहिता की धारा-304ब के अन्तर्गत दोषी को दण्डित करने के लिये मृत्यु कारित करने के *मेन्स रिया*[44] को सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है; किसी को उस कार्य के लिये भी दण्डित किया जा सकता है जिसे करने के लिये उसका मस्तिष्क दोषपूर्ण नहीं था। ऊष्मा गतिकी के द्वितीय नियम के अनुसार कोई भी अस्थिर व्यवस्था यदि बिना किसी बाह्य हस्तक्षेप के ऐसे ही चलने दी जाये तो वह अपने आप मूल व्यवस्था से कुव्यवस्था की ओर अग्रसर होती जाती है। यहाँ पर भी मेन्सरिया की कोई भी आवश्यकता नहीं है। कुछ अपराध निराशय स्तर पर भी होते हैं।

सार्वभौम रूप से, धनात्मक ऊर्जा का विध्वंसात्मक ऊर्जा में किसी भी प्रकार से किया गया रूपान्तरण अपराध की परिभाषा की परिधि में आता है। ऐसा प्रतिदिन के सामान्य जीवन के किसी भी चरण में किसी भी स्तर पर होना कभी भी पाया जा सकता है। यह शाश्वत एवं सर्वव्यापी है। चूँकि आपराधिक कृत्यों की इन्द्रियों द्वारा अनुभूति की जा सकती है और उनके प्रभाव को सम्पूर्ण मानवता द्वारा अनुभव किया जा सकता है, इसलिये अपराध का अपना एक अलग अस्तित्व है और उसके अस्तित्व को स्वतन्त्र रूप से पहचाना जा सकता है। यद्यपि अपराध पर कुछ सीमा तक रोक लगायी जा सकती है परन्तु उसका समूल नाश नहीं किया जा सकता। इसलिये बुराई की अनुपस्थिति के प्रयास के स्थान पर अच्छाई की बुराई पर जीत का लक्ष्य प्राप्त करते हुए अच्छाई और बुराई का अन्तरिक्षीय सन्तुलन बनाये रखने का प्रयास ही सर्वोत्तम सम्भव प्रयास होगा। इसी प्रकार से, यदि अपराध का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है और उसका इन्द्रियों द्वारा बोध किया जा सकता है तो अपराध एक तथ्य अथवा घटना है। यदि अपराध मात्र एक सामाजिक तथ्य अथवा घटना होता तो सामाजिक रूप से स्थिर व्यक्ति कभी भी अपराध नहीं करते। और जब मानव-समाज का अस्तित्व नहीं था तो क्या पृथ्वी पर अपराध नहीं था ? अपराधिता और प्रकृति

जुड़वाँ जन्मे थे और इनकी अन्त्येष्टि भी साथ ही होगी।

कोई भी जीव अच्छाई और बुराई में भेद कर सकता है; यद्यपि उसका प्रकार समान होगा, उसका अंश भिन्न होगा। मधुमक्खी कभी भी विष भरे पुष्प का रस नहीं निकलती है। कुत्ता केवल अजनबियों पर ही भौंकता है। *क्रेस्कोग्राफ़*[45] पर अंकित की गयी गतियाँ यह पहले ही स्थापित कर चुकी है कि पौधों में संवदेनशीलता होती है। माइमोसा प्यूडिका पौधे को छूने पर वह अपनी पत्तियाँ संकुचित कर लेता है। पौधों और बीजों की *भूअनुवर्तन*[46], *जल अनुवर्तन*[47], *प्रकाश अनुवर्तन*[48], *ठोस अनुवर्तन*[49] आदि विशिष्टतायें उनकी अनुभूति, भेद तथा निर्णय की योग्यता के कारण होती हैं। ट्रम्पेट क्रीपर (कैम्पसिस) और सीलेन्थेरा पेडाटा में *प्रतागों*[50] में स्थित संवदेनशील तन्त्रिकायें इन पौधों के अन्य भागों को सन्देश भेजती हैं और उसी सन्देश के आधार पर ये पौधे अपनी गतिविधि के बारे में निर्णय लेते हैं। वनस्पति शास्त्री ए. हयात वेरिल ने यह प्रयोग किया था कि रेंगने वाली लतायें मित्र और अजनबी में भेद करने की योगयता रखती हैं। न्यूयॉर्क के वैज्ञानिक क्लू वैक्सटर ने यह अवलोकित किया था कि ड्रासेना पौधे ने उसका आशय समक्ष लिया था और *पॉलीग्राफ़*[51] पर अपनी प्रतिक्रियायें प्रदर्शित की थीं। क्या अनुभूति, भेद और निर्णय की यह योग्यता पौधों में तन्त्रप्रणाली और मस्तिष्क का अस्तित्व होना इंगित नहीं करती—चाहे उसका अस्तित्व अत्यन्त ही प्रारम्भिक अवस्था में ही क्यों न हो ? क्या पौधों में चेतना नहीं होती ? सूरजमुखी का फूल प्रकाश के प्रति प्रतिक्रिया दिखाता है और बालक चाकलेट के प्रति। दोनों ही अपने स्तर पर अपरिपक्व मस्तिष्क रखते हैं। क्या जिनमें अनुभूति होती है, उनमें आशय की क्षमता नहीं होती ?

मादा मकड़ी सहवास के उपरान्त नर को खा जाती है। यूट्रीकुलेरिया और नेपेन्थीज़ पौधे कीटभक्षी मेंढक और ड्रासेरा रेजाइना छिपकली तक खा जाते हैं। कुछ माँसाहारी पौधे छोटी चिड़ियाँ और बन्दर तक का शिकार करते हैं और, जैसा जे. डी. हूकर ने खोज की थी, इन पौधों द्वारा स्त्रावित एन्ज़ाइम, ट्रिप्सिन आदि, उसी प्रकार के हैं जैसे मनुष्य के आमाशय में पाये जाते हैं। सभी कीटभक्षी और माँसाहारी पौधे अपनी नाइट्रोजन की आवश्यकता को पूरा करने के लिये जीवों की हत्या करते हैं, और नाइट्रोजन विहीन प्रेरकों के सम्पर्क में आने पर कोई भी प्रतिक्रिया नहीं दिखाते। यदि उन्हें आवश्यक नाइट्रोनज इन्जेक्शन द्वारा दी जाये तो क्या ये पौधे जीवों की हत्या करना बन्द कर देंगे ? क्या पौधों की अपेक्षित और अनपेक्षित वस्तुओं में भेद कर पाने की यह योग्यता—यद्यपि इसका कोण एवं अंश भिन्न है—मनुष्य की इसी योग्यता के समान नहीं है ? क्या जिनमें अनुभूति और आशय की क्षमता होती है, उनमें भिन्न और विपरीत अनुभूति एवं आशय की क्षमता नहीं होती ? क्या एक प्रवृत्ति को रखने वाले उसकी विपरीत प्रवृत्ति भी नहीं रखते हैं—यह हो सकता है कि वह विपरीत प्रवृत्ति सुषुप्तावस्था में हो ? जर्मनी के कवक वैज्ञानिक विल्हेम जौफ़ ने

1880 ई. में यह खोज की थी कि कुछ फ़ंजाई या मोल्ड निमैटोड, अमीबा, रोटीफ़र, ऑथ्रोबोट्रिक्स, ओलीगोस्पोरा आदि का शिकार करते हैं। यद्यपि अतिसूक्ष्मतर स्तर पर ही, तथापि क्या दूसरे के जीवन के मूल्य पर अपनी आवश्यकता पूरी करना बुराई नहीं है।

यद्यपि प्रकृति के सभी नियम धनात्मक हैं, प्रकृति स्वयं में धनात्मकता और ऋणात्मकता, अच्छाई और बुराई, दोनों ही की द्विभाजन प्रवृत्ति रखती है। जब *उत्तरी ध्रुव*[52] का अस्तित्व है तो दक्षिणी ध्रुव का भी अस्तित्व होगा जो उत्तरी ध्रुव की विशेषताओं के विपरीत विशेषतायें और लक्षण रखेगा। रात और दिन का दोलायमान होना एक प्राकृतिक घटना है। रेगिस्तान ओर हरियाली दोनों ही के भूखण्ड पृथ्वी पर प्रकृति के उत्पाद हैं। चमकते सितारों और प्रकाशहीन *अन्ध-तत्त्व*[53] का अन्तरिक्ष में साथ-साथ अस्तित्व है। प्रत्येक गुलाब के साथ काँटे हैं। क्या प्रकृति ने अपने वंशजों को दोनों प्रकार से निर्मित नहीं किया है ? क्या वज्रपात, अकाल, वन की आग और महामारी स्थापित प्राकृतिक व्यवस्था में स्वयं प्रकृति के अविवेक द्वारा ही उत्पन्न की गयी कुव्यवस्थाओं के जीवित उदाहरण नहीं हैं ? क्या मानव शरीर में होने वाली कुव्यवस्था, *निर्जलन*[54], प्रकृति में होने वाली कुव्यवस्था, सूखा के और इसी प्रकार *जलोदर*[55] बाढ़ के सदृश्य नहीं हैं ? क्या मानव त्वचा पर फोड़े के रूप में तथा पृथ्वी की त्वचा पर ज्वालामुखी के रूप में उभरने वाली कुव्यवस्थायें समान नहीं हैं ? क्या मनुष्य और प्रकृति में पाई जाने वाली ये सभी कुव्यवस्थायें चेतना—या कम-से-कम अर्धचेतना—के स्तर पर नहीं हैं ? अन्य जीवों की भाँति, क्या प्रकृति ने अपनी चेतना का, और कभी-कभी अपने निराकार विवेक का भी, दुरुपयोग अपने ही नियमों का उल्लंघन करते हुए नहीं किया है ? क्या अन्तरिक्षीय घड़ी ने कभी-कभी साशय दोहरी ध्वनि उत्पन्न नहीं की है ? क्या *विध्वंसात्मक प्राकृतिक घटनायें*[56] स्वयं प्रकृति द्वारा किये गये अपराध की द्योतक नहीं हैं ? *अन्तरिक्षीय मेन्सरिया*[57] की झाँकियाँ प्रकृति में प्रलम्बित हैं।

अपराध तरंगें

उस विशाल विस्फोट जो सम्पूर्ण अन्तरिक्ष में प्रतिध्वनित होता रहा, ने अन्तरिक्षीय तापमान के अचानक पतन के अन्तर्गत अचल ऊर्जा को विभिन्न आवृत्तियों की सचल तरंगों में रूपान्तरित कर दिया। *अन्तरिक्षीय केन्द्र*[1] से झरनों के रूप में निकलती इन अभौतिकीय कारक-तरंगों, जिनका तुरन्त परिणाम समय, दूरी और पुनः कारणत्व था, ने धीरे-धीरे अन्तरिक्षीय माध्यम में विभिन्न प्रकार के भौतिकीय बन्धनों को निर्मित किया। अगिनत तरंगों के अन्तरिक्षीय सागर में अद्‌भुत विशेषताओं की कुछ विशिष्ट तरंगें सर्वप्रथम कम्पायमान इलेक्ट्रान, प्रोट्रीन, न्यूट्रान, आयन आदि के रूप में प्रकट हुईं जबकि कुछ तरंगें अपना मूल प्रारूप धारण किये हुए प्रारम्भिक रूप से केन्द्रित *पराचुम्बकत्व*[2] के चारों ओर अन्तहीन यात्रा करती रहीं। न्यूट्रान आदि से बने पहले कम्पायमान पदार्थ—परमाणु—ने अन्तरिक्षीय सृष्टि की प्रक्रिया के द्वारा स्वयं को अणु, अकार्बनिक एवं कार्बनिक यौगिकों, जीवित तथा अजीवित मिश्रणों आदि की और जटिल व्यवस्थाओं में रूपान्तरित किया। इस प्रकार से सम्पूर्ण अन्तरिक्षीय पदार्थ भौतिकता और उसके बीच प्रलम्बित अभौतिकीय तरंगों से मिलकर बना है। प्रत्येक भौतिक वस्तु के भीतर कम्पायमान तरंगें हैं।

अन्तरिक्षीय सृष्टि के *अपकेन्द्रीय और अभिकेन्द्रीय*[3] दोनों ही गुणों के कारण अन्तरिक्षीय तरंगें जिन्होंने अन्तरिक्षीय गर्भाधान के समय से ही भ्रूणीय अन्तरिक्ष का पोषण किया, ऊर्जा के नये और पुराने प्रारूपों के अन्तरिक्षीय रूपान्तरण और प्रतिरूपान्तरण की प्रक्रिया में लगातार एवं निर्बाध रूप से व्यस्त रहीं। तरंगों ने पदार्थ की रचना की, और अभी भी करती हैं, तथा पदार्थ से पुनः तरंगें उत्पन्न हुईं, और अभी भी उत्पन्न होती हैं। और ये दोनों प्रक्रियायें प्राकृतिक नियमों के प्रत्यक्ष प्रभाव के अन्तर्गत होती हैं। जीवन, उसके जिस रूप को हम मान्यता देते हैं, जीवन के लिये आवश्यक तरंगों के प्रभाव में मूल पदार्थ के पृथ्वी पर सुव्यवस्थित रूप से क्रमबद्ध होने पर आरम्भ हुआ। तरंगों के इस जैविक सम्मिश्रण के विघटन से जीवन का अन्त हुआ। इसलिये कोई भी गति, चाहे वह कितने ही सूक्ष्म प्रकार, अंश, कोण और प्रारूप की क्यों न हो तरंगों के आन्तरिक एवं बाह्य हस्तक्षेप के बिना सम्भव नहीं है। *जैविक तरंगों*[4] के बिना जीवन, जीवन-रहित है।

विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा से भरा *अन्तरिक्षीय निर्वात*[5] पूरे अन्तरिक्ष में निरन्तर हो रहे कम्पनों का अनुभव करता रहता है। अन्तरिक्ष में प्रलम्बित विद्युत चुम्बकीय बल न केवल पारस्परिक *अन्तरिक्षीय तनाव*[6] के लिये ही उत्तरदायी है, वरन् वह ग्रहों, उपग्रहों, तारों और आकाशगंगाओं की अन्तरिक्षीय गतिविध को भी नियन्त्रित करता है। यह खगोलीय पिण्डों के बीच के आकर्षण और प्रत्याकर्षण का योग ही है जिसके द्वारा ये पिण्ड अन्तरिक्षीय धरातल पर अपने-अपने पथों पर ही चलते हैं; और ऐसा आकर्षण एवं प्रत्यकर्षण तरंगों के कारण ही सम्भव है। प्रकृति की किसी भी घटना—वज्रनाद, कलियों का खिलना, जल अनुवर्तन, चक्रवात आदि का प्रकट होना विभिन्न प्रकार के कम्पनों के प्रत्यक्ष पर्यविक्षण में होता है। इसी प्रकार से, ज़ाइलम में जल का प्रवाह, *रसाकर्षण*[7], भूचाल, शिराओं में रक्त का प्रवाह आदि तरंगों द्वारा कारित दाब में विभिन्नता के कारण ही घटित होता है। न केवल प्रकृति वरन् सम्पूर्ण अन्तरिक्ष विभिन्न तरंगों की लय में कम्पायमान रहता है और यही तरंगें अन्तरिक्षीय उद्योग की धारायें हैं।

मानव-शरीर विभिन्न तरंग-लम्बाइयों की आन्तरिक धाराओं से बने धागों से गुथी भौतिकता के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। मनुष्य के कशेरूक दण्ड में तैंतीस कशेरूकायें हैं—सर्वाइकल में सात, डॉर्सल में बारह, लम्बर में पाँच, सेक्रल में पाँच तथा कॉक्सीकल में चार। *न्यूरेक्सिस*[8] का रथ मानव शरीर में चलायमान *विद्युत धाराओं के सात गतिशील चक्रों*[9] से संचालित एवं नियन्त्रित होता है। इन धाराओं में से दो मस्तिष्क में तथा पाँच उन विशेष स्थानों में पाई जाती हैं जिनसे होकर कशेरूक दण्ड गुज़रता है। नीचे से पहला कॉक्सीकल क्षेत्र का वृत्त मूत्राशय एवं गुदा के अंगों को नियन्त्रित करता है, दूसरा सेक्रल क्षेत्र में प्रजनन, तीसरा लम्बर क्षेत्र में पाचन और पचे हुए भोजन का अवचूषण, चौथा डार्सल क्षेत्र में श्वास और हृदय, पाँचवाँ सर्वाइकल क्षेत्र में वाक् क्रिया तथा छठा और सातवाँ मस्तिष्क में संवेदन अंगों तथा विचार आदि की क्रियाओं को नियन्त्रित करता है। उत्तर-दक्षिण दिशा में उत्तर की ओर सिर करके नियमित रूप से सोने से *शरीर के चुम्बकत्व*[10] के पृथ्वी के उत्तर-दक्षिण दिशा में प्रवाहित चुम्बकीय क्षेत्र के प्रत्यक्ष रूप से सम्पर्क में आने से स्नायु-तन्त्र प्रणाली की क्षमता पर ग्रहण लग सकता है। शरीर में सभी सन्देश एक स्थान से दूसरे स्थान पर धाराओं के माध्यम से ही यात्रा करते हैं। हृदय की धड़कनों के कारण निर्गत विद्युत तरंगों के कारण मानव-शरीर की विद्युतीय क्षमता में परिवर्तन होता रहता है। क्या जिस प्रकार की विद्युतचुम्बकीय तरंगें एक परमाणु को बाँधे रखती हैं, उसी प्रकार की विद्युत चुम्बकीय तरंगें, कोशिकाओं, ऊतकों और अंगों के जाल को भी नियन्त्रित नहीं करती हैं ? क्या मानव-शरीर इन तरंगों, जो शरीर और मस्तिष्क की संरक्षक और विध्वंसक दोनों ही हैं, का दास नहीं है ? तरंगें अन्तरिक्षीय नियमों और व्यवस्था की भाँति *आन्तरिक दुनिया*[11] की भी स्वामिनी हैं और उसके

नियमों की भी शासक हैं।

रंगों का मनुष्यों पर अपना अलग-अलग प्रभाव होता है; रंग यह प्रभाव तरंगों के माध्यम से ही मनुष्यों पर डालते हैं—

लाल—तन्त्रिका और रक्त की रचनात्मकता बढ़ाने में उपयोगी होता है; संवेदन कोशिकाओं और एडरीनल ग्रन्थि को उत्तेजित करता है; शरीर में जीवनत्व बनाये रखने में सहायक है।

नारंगी—शरीर की रोग निरोधक क्षमता को बढ़ाता है; टिटेनस और अस्थि रोगों के इलाज में प्रयोग किया जाता है; कैल्शियम की चयापचयता को बढ़ाता है; फेफड़ों, अग्न्याशय और तिल्ली को सशक्त करता है; अनुभूतियों को जागृत करता है; रक्तचाप सामान्य रखते हुए धमनियों में रक्त के प्रवाह को बढ़ाता है।

पीला—मोटर तन्त्रिकाओं और पाचन अंगों की कार्य-क्षमता को बढ़ाता है; माँसपेशियों को शक्तिशाली बनाता है; बुद्धि का विकास करता है।

हरा—धमनियों के फैलाव में सहायता करता है; हृदय में अच्छी भावनाओं का विकास होने में सहायता करता है; मानसिक तनाव कम करता है।

बैंगनी—मलेरिया के इलाज में प्रयोग होता है; शरीर में पोटैशियम का सन्तुलन बनाये रखता है; ट्यूमर का विकास रोकता है; दर्दनाशक के रूप में भी प्रयोग होता है।

नींबू—सेरीब्रम को सजीव रखता है; पाचन-शक्ति बढ़ाता है।

मैजेण्टा—चर्मरोगों और साइनोसाइटिस के इलाज में सहायक होता है।

गुलाबी—भावनात्मक विकास को नियन्त्रित करता है।

श्रव्य चिकित्सक रोगी को वही ध्वनि सुनवाते हैं जो उसकी व्याकुल भावनाओं को ठीक करने के लिये आवश्यक है। विशेष गानों, चित्रों, मूर्तियों आदि से निकलती तरंगें हमारे हृदय की ऋतुओं को भिन्न-भिन्न प्रकार से आह्लादित करती हैं। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों अथवा वस्तुओं का स्पर्श करने से शरीर में विभिन्न धाराओं के प्रवाह के कारण भिन्न-भिन्न प्रकार की अनुभूतियाँ ओर इच्छायें मनुष्य में उत्पन्न होती हैं। यहाँ तक कि अनुभूतियों और इच्छाओं के समान ही विचार और आशय भी आन्तरिक और बाह्य तरंगों से नियन्त्रित होते हैं। तरंगें विचार आदि की भी रचयिता और शासक हैं।

जीन्स और टाइपराइटर की कुञ्जी-फलक एक समान हैं। प्रत्येक जीवित कोशिका पूरे मानव-शरीर की रचना करने की क्षमता रखती है। तरंगें कुञ्जी-फलक को चलाने वाली अंगुलियों के समान हैं और यकृत का निर्माण करती तरंगें यकृत की तथा हृदय का निर्माण करती तरंगें हृदय की ही कुञ्जियों को दबाती हैं। *मनोदैहिक*[12] कुव्यवस्थाओं, जो मात्र एक साधारण विचार से आरम्भ होकर विचारक के विभिन्न अंगों में विभिन्न रोगों का रूप ले सकती हैं, के पोषण में तरंगों का पूर्ण नियन्त्रण

होता है। अपने अन्तःकरण में राई से पर्वत तक मनुष्य तरंगों की पूर्ण अधीनता में रहता है।

नेत्रों से प्रकाश के लगातार प्रवेश होते रहने से मानव-शरीर में प्रतिदिन प्रचुर मात्रा में ऊष्मा का प्रवेश होता रहता है। ऐसे ही त्वचा से भी ऊष्मा का प्रवेश होता है। यदि यह ऊष्मा व्यय न हो या ऊर्जा के अन्य प्रारूपों में परिवर्तित न हो या किसी-न-किसी रूप में शरीर से बाहर न निकले तो यह मानव-शरीर ऊष्मा के एकत्रीकरण के कारण एक दिन स्वतः ही राख का ढेर हो जाये। दिन में पृथ्वी द्वारा अवशोषित ऊष्मा के समान ही यह ऊष्मा भी ऊष्मा-ऊर्जा युक्त अदृश्य अवरक्त-किरणों के रूप में विकिरित होती रहती है। अवरक्त कैमरे से लिये गये चित्रों ने इसे सिद्ध किया है। मुँह से निकाले गये शब्द, ताली बजाना, अंगुली चटकाना, डकार लेना, गुनगुनाना, जम्हाई लेना आदि कार्यों से भी ध्वनि तरंगों के रूप में शरीर से ऊर्जा निकलती है। ये ध्वनि तरंगें शरीर से निकलकर ऊष्मा तरंगों में परिवर्तित हो जाती हैं। हृदय के निरन्तर संकुचन और प्रसारण, माँसपेशियों की गति, आसन में परिवर्तन आदि से भी ऊर्जा व्यय होती है। इस प्रक्रिया में मानव-शरीर के बाहर तक भी तरंगें निकलती हैं। क्या मानव-शरीर से प्रतिक्षण लगातार तरंगें निर्गत नहीं होती हैं ? मनुष्य के शरीर से निकलने वाली विद्युतचुम्बकीय तरंगों की क्षमता 3-4 वोल्ट होती है।

मायोग्राफ़[13] और *इलेक्ट्रोकार्डियोग्राफ़*[14] क्रमशः माँसपेशियों और हृदय की तरंगों को अंकित करते हैं; *इलेक्ट्रोएनसेफ़ेलोग्राफ़*[15] *मस्तिष्क की तरंगों*[16] की आन्तरिक गतिविधियाँ अंकित करता है। अत्यधिक शारीरिक श्रम करने या बोलने के समान ही थका देनेवाली अत्यधिक विचार करने की प्रक्रिया में भी ऊर्जा का व्यय होता है और विभिन्न प्रकार की मस्तिष्क तरंगें निकलती हैं। यह व्यय हुई ऊर्जा मनुष्य की त्वचा से विकिरित होने पर विभिन्न तरंग लम्बाइयों की विद्युत चुम्बकीय तरंगों में रूपान्तरित हो जाती है। इन विद्युत चुम्बकीय तरंगों की मात्रा, प्रकृति और गुण मुक्त हुई ऊर्जा की मात्रा, प्रकृति और गुण पर निर्भर करती है। इसी प्रकार से, माँसाहारी चिड़िया की छाया पड़ने पर चूज़ा तुरन्त ही रक्षात्मक व्यवहार अपनाता है और छाया हटने पर तुरन्त उसके व्यवहार में सामान्यता आ जाती है। इस प्रक्रिया में प्रेरक (छाया) द्वारा चूज़े के आन्तरिक ऊर्जा के यन्त्र विन्यास को प्रेरित करने पर वह आन्तरिक ऊर्जा मुक्त होती है। बाह्य-प्रेरक के कारण उत्पन्न हुई आन्तरिक प्रतिक्रिया के परिणाम स्वरूप मस्तिष्क में आई सन्तुष्टि अथवा असन्तुष्टि विचार को जन्म देती है जो स्वयं ऊर्जा व्यय करता है और इस प्रकार विचार उत्पन्न होने से भी शरीर के बाहर भी ऊर्जा निकलती है। विचार, इच्छा, आशय रूपी निराकार आन्तरिक घटनायें भी ऊर्जा मुक्त करती हैं जो मानव त्वचा के बाहर भी तरंगों के रूप में यात्रा करती हैं। यहाँ तक कि शरीर के अवगुण और सद्गुण—आन्तरिक रूप से एकत्रित ऊर्जा के

प्रकार—भी तरंगें उत्सर्जित करते हैं चाहे उन्हें प्रदर्शित न करके उन गुणों की मात्र अनुभूति ही की गयी हो। मानव-शरीर के ज्ञात और अज्ञात सभी *स्तर*[17] मानव त्वचा से तरंगों के रूप में ऊर्जा का उत्सर्जन करते हैं।

दूरदर्शन केन्द्र पर किसी कला के प्रदर्शन से उत्सर्जित हुई श्रव्य-दृष्टि तरंगें दूसरे प्रारूप की विद्युत चुम्बकीय तरंगों में अंकित एवं रूपान्तरित की जाती हैं और उन्हें वातावरण में सहस्त्रों मील दूर संचारित किया जाता है। उचित दिशा में लगे किसी दूरदर्शन एन्टीना द्वारा पकड़ने पर ये तरंगें दूरदर्शन यन्त्र द्वारा उन्हीं श्रव्य-दृष्टि तरंगों में पुनः परिवर्तित की जाती हैं। ये तरंगें दूरदर्शन पर वही कला उसी रूप में प्रदर्शित करती हैं जो दूरदर्शन केन्द्र पर अंकित की गयी थी। रेडियो कार्यक्रम, दूरभाष पर वार्ता, तार और बेतार सन्देशों के प्रसारण में भी यही होता है। किसी कार्य या ध्वनि के समान ही ऊर्जा व्यय करने की कोई भी विशेष प्रक्रिया विशेष तरंगों की सृष्टि करती है और ये तरंगें वातावरण और उससे भी आगे तब तक अस्तित्व में रहते हुए यात्रा करती रहती हैं जब तक कि वे ऊर्जा के अन्य प्रारूपों में परिविर्तत अथवा मूल रचित तरंगों के रूप में ही पुनः परिवर्तित न हो जायें। यहाँ तक कि अवगुणों ओर सद्गुणों की अभिव्यक्ति, प्रदर्शन, दमन अथवा वृद्धि की प्रक्रिया भी अभिव्यक्ति, प्रदर्शन, दमन अथवा वृद्धि के स्तर के अनुसार तरंगों के रूप में मात्रात्मक और गुणात्मक ऊर्जा मुक्त करती है। जब वसन्त प्रसन्नता की तरंगों की वर्षा करता है, घृणा घृणा-तरंगों को विकिरित करती है, शनि नीली-तरंगें उत्सर्जित करता है और सहानुभूति सहानुभूति-तरंगों को संचारित करती है तो वातावरण में कौन-सी तरंगों की रचना अपराध और अपराधता करेंगे ?

जब मैं अपनी पत्नी की प्रशंसा करता हूँ तो वह प्रसन्न हो जाती है; जब मैं उसे झिड़कता हूँ तो वह उदास हो जाती है। सोचे, बोले या लिखे गये शब्दों के विभिन्न सम्मिश्रण विभिन्न तरंगें उत्सर्जित करते हैं। जब मैं संकेत मात्र से ही क्रोध प्रदर्शित करता हूँ तो मेरा पुत्र शरारत करना बन्द कर देता है; जब मैं मुस्कुरा देता हूँ तो वह सहज हो जाता है। भिन्न मुद्रायें और संकेत भी भिन्न तरंगें उत्सर्जित करते हैं। किसी वस्तु, पदार्थ अथवा कार्य की स्थिति विशेष, रंग विशेष आदि का नेत्रों द्वारा बोध करने के लिये उस वस्तु आदि से प्रकाश तरंगों का उत्सर्जन आवश्यक है। इसी प्रकार से, उस वस्तु आदि का कानों से बोध करने के लिये उससे ध्वनि तरंगें उत्सर्जित होना आवश्यक है। किसी आपराधिक कार्य आदि की अपराधता का बोध करने के लिये उस आपराधिक कार्य से किस प्रकार की तरंगों का उत्सर्जन आवश्यक होगा ? अच्छे कार्य आदि अच्छी तरंगों की रचना करेंगे, बुरी भावनाओं की अनुभूति वातावरण में बुरी तरंगें फैलाएगी; आपराधिक विचार, इच्छा अथवा आशय अन्तरिक्ष में अपराध तरंगों के अतिरिक्त और कुछ नहीं कम्पायमान करेगा। अपराध स्वयं अपराध तरंगें उत्पन्न करता है; और ऐसा ही *काल्पनिक अपराध*[18] भी करते हैं।

आपराधिक प्रकृति की किसी भावना, अनुभूति, इच्छा, आशय, कार्य अथवा भूल द्वारा उत्पादित अपराध तरंगें विभिन्न क्षमताओं, तीव्रताओं, आवृत्तियों और तरंग लम्बाइयों की होती हैं और उनकी प्रकृति, मात्रा व गुण उस आपराधिक भावना आदि में विद्यमान अपराधता की प्रकृति, मात्रा व गुण पर निर्भर करती है। जैसी बुरी भावना आदि होगी, वैसी ही उसमें से मुक्त ऊर्जा का प्रकार होगा। अपराधता विभिन्न प्रकार एवं वेग से इन्हीं अपराध कम्पनों के रथ पर विभिन्न परिस्थितियों के प्रभाव में रहते हुए अन्तरिक्ष में यात्रा करती है। प्रत्येक अपराध तरंग की अपनी अलग पहचान है; यद्यपि किसी विशेष आपराधिक विचार आदि से निकली विशेष अपराध तरंगों का पुँज ही अपनी विशिष्ट पहचान व प्रभाव रखता है। इच्छा, कार्य, भूल आदि द्वारा किये गये विभिन्न अपराध वे तुरन्त कारण हैं जिनका अपृथक्करणीय परिणाम इन अपराध तरंगों का उत्पादन है जो कुछ अनिवार्य शर्तों के अन्तर्गत स्वयं ही अपराध के मूल कारण के तीन मूल तत्त्वों में से एक है। अपराध के कारण का एक भाग अन्तरिक्षीय माध्यम में उतराता रहता है।

अन्य तरंगों की ही भाँति, अपराध तरंगों द्वारा भी प्रकृति के मूल नियमों का पालन किया जाता है। अपराध तरंगों के कुछ प्राकृतिक गुण इस प्रकार हैं—

(क) समान आवृति, तरंग—लम्बाई और प्रकृति की अपराध तरंगें एक साथ समूह में भ्रमण करती हैं।

(ख) ऊर्जा के रूप में इन तरंगों में संचित सक्रियता कम्पन और हलचल के रूप में अभिव्यक्त होती है।

(ग) अपराध तरंगें प्रकाश किरणों की भाँति भौतिकीय और अभौतिकीय दोनों ही माध्यमों में यात्रा करती हैं। अन्तरिक्ष यात्री के नेप्चून ग्रह पर पहुँचने पर अपराधता वहाँ भी उसका स्वागत करेगी।

(घ) किसी भौगोलिक क्षेत्र में एक विशेष प्रकार की अपराध तरंगों की जितनी ही अधिक सघनता एवं सान्द्रता होगी, उतनी ही अधिक उस क्षेत्र के केन्द्र में उस अपराध के प्रति आकर्षण शक्ति होगी। उस क्षेत्र के मनुष्य उस विशेष प्रकृति के अपराध के प्रति अधिक रुझान रखेंगे। अपराध का गुण सार्वभौम और यत्र-तत्र दोनों ही प्रकार का है।

(ङ) अपराध तरंगों की एक क्षेत्र में अल्पता उनके दूसरे क्षेत्र में बाहुल्य के कारण उत्पन्न हुए *'रसाकर्षण दाब'*[19] के कारण सदैव मिलावट के ख़तरे में रहती है।

(च) एक-दूसरे के मार्ग में आने पर अपराध तरंगें न तो एक-दूसरे को काटती, व्यवधान उत्पन्न करती या प्रतिच्छेदित करती हैं और न ही वे परस्पर मिश्रित या विकीर्ण होती हैं। वे अपनी पहचान भी दूसरी तरंगों में परिवर्तित अथवा पुनः परिवर्तित होने तक नहीं खोती हैं।

(छ) अधिक घनत्व वाली *प्रधान अपराध तरंगें*[20] अक्सर उन्हीं से मिलती-जुलती

विशेषताओं की *सहायक अपराध तरंगों*[21] से घिरी रहती हैं। यह सहायक तरंगें कभी-कभी *प्रधान तरंगों के प्रभावित हुए बिना*[22] अपराध परिणामों के रूप में अवक्षेपित हो जाती हैं।

(ज) अन्य तरंगों की भाँति, अपराध तरंगें भी घोर शक्तिशाली होती हैं। जैसे किसी काँच के टुकड़े के पास तरंगों का संगठित रूप से किया गया निरन्तर कम्पन उसे तोड़ सकता है और किसी प्लाटून का पुल पर किया गया लयबद्ध प्रयाण पुल के लिये ख़तरनाक सिद्ध हो सकता है, उसी प्रकार से तीव्र क्षमता की अपराध तरंगों का निरन्तर आक्रमण किसी भी *भेद्य अकम्पायमान आपराधिक आत्मा*[23] को कम्पायमान कर सकता है।

(झ) अपराध तरंगें *होमियोपैथी की दवा*[24] के रूप में व्यवहार करती हैं। ऊर्जा की मुक्ति के समय उनकी श्रेणी और गुण जितना ही कम होगा उतनी ही अधिक उससे उत्पन्न तरंगों की तरंग लम्बाई और क्षमता होगी।

(ञ) दो या दो से अधिक अपराध तरंगें संश्लेषण द्वारा नये प्रकार की अपराध तरंगों की रचना कर सकती हैं। इन नई तरंगों में एक ओर अपनी पैत्रिक तरंगों के मूल गुण होते हैं तथा दूसरी ओर वे उनसे पूर्णतया भिन्न होती हैं। वधू को जलाना भारत में एक नया अपराध है जबकि विवाह यहाँ एक अत्यन्त ही प्राचीन प्रथा रही है।

(ट) अपराध के प्रत्येक चरण—आशय, तैयारी, प्रयत्न एवं कार्यान्वयन—पर अपराध तरंगें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

(ठ) विशेष परिस्थितियों में हुए नये कम्पन भी नई अपराध तरंगें उत्पन्न कर सकते हैं। अपराध तरंगों का संश्लेषण मानव शरीर के भीतर भी हो सकता है।

(ड) कोई भी व्यक्ति वातावरण में जितना ही अपराध तरंगें उत्सर्जित करेगा, उतना ही वह उन्हें वातावरण से पुनः प्राप्त करने के लिये उपयुक्त होगा।

(ढ) अपने आप में *पूर्ण अपराध तरंगों*[25] का अस्तित्व अन्तरिक्ष में कहीं भी नहीं है। इसके स्थान पर, अपराध तरंगें उत्पन्न करने वाले की अपराधता की प्रकृति, मात्रा और गुण के आधार पर ही उन तरंगों में विद्यमान अपराधता की प्रकृति, मात्रा और गुण निर्भर करता है।

(ण) अपराध तरंगों में युद्ध होने पर योग्यतम तरंगें ही उत्तरजीवी होती हैं—चाहे वह युद्ध आन्तरिक हो या बाह्य। जो तरंगें मनुष्य और उसकी उस समय की परिस्थितियों के लिये सर्वाधिक उपयुक्त होती हैं, उन्हीं की विजय होती है।

(त) चूँकि विकसित अपराध तरंगों का स्रोत विशेष रूप से मानव-शरीर के भीतर होता है इसलिये अपराधियों के शरीर में अपराध तरंगों की धाराओं का नियमित रूप से प्रवाह होता रहता है। उनके शरीर में *अपराधता का आवेश*[26] नियमित रूप से बना रहता है। यह आवेश शरीर के भीतर हो रहे आपराधिक कम्पनों



की शक्ति के प्रत्यक्ष अनुपात में होता है।

(थ) उत्तेजना आदि को छुपाने के लिये मस्तिष्क द्वार किया गया बलपूर्वक प्रयास एडरीनल ग्रन्थियों को प्रेरित करता है जिससे एडरीनलिन का अधिक मात्रा में स्राव होता है। यह मात्रा रक्त की धाराओं में प्रवेश करके श्वास, रक्तचाप और हृदय की धड़कन को बढ़ा देती है, जिसे पॉलीग्राफ़ पर अंकित किया जा सकता है। शरीर में विद्यमान अपराध तरंगें भी शरीर के प्रत्येक आन्तरिक और बाह्य अंग को प्रभावित करती हैं और यह प्रभाव *क्राइमोग्राफ़*[27] पर अंकित किया जा सकता है।

(द) अपराध तरंगें अपराधियों द्वारा मानवीय चेतना के—और यहाँ तक कि मानवीय अचेतना के भी—सभी स्तरों से निकलती एवं पकड़ी जाती हैं और कभी-कभी ऐसा होने में किसी भी अन्य अन्तरिक्षीय कारण का हस्तक्षेप नहीं होता है—सिवाय स्वयं उन अपराध तरंगों के जो अपराध कारित होने के त्रितीय अन्तरिक्षीय कारण के रूप में विचरण करती रहती हैं।

आपराधिक एन्टीना

समय, दूरी और कारणत्व के अन्तरिक्षीय पहिये के आवर्तन के क्षण से ही सभी अन्तरिक्षीय सक्रियताओं का बोध मूल अभौतिकता ने *अन्तरिक्षीय आँख*[1] के द्वारा किया। प्रकृति की विभिन्न घटनाओं के आवर्तित रूप से हुए सार्वभौम आभासों के कारण हुए अन्तरिक्षीय संवदेनों को न केवल प्रकृति के अभिग्राहकों ने पकड़ा वरन् उन सभी वस्तुओं और तत्त्वों, जो काल-क्रमानुसार शनैः-शनै अस्तित्व में आते गये, ने भी उनका बोध किया। प्रकृति में डूबती-उतराती सभी श्रंगिक प्रवृत्तियों ने धीरे-धीरे परिमार्जन की प्रक्रिया द्वारा सन्देश पकड़ने, सन्देश संचारण और सन्देश प्रसारण के सभी गुणों को लगभग प्रत्येक जीव में प्रदर्शित करना आरम्भ कर दिया। परिमार्जन की इस प्रक्रिया के फलस्वरूप अतिसंवेदनशील मानव एन्टीना का अवतरण हुआ, जिसका केन्द्र मनुष्य के मस्तिष्क में और शाखायें पूरे शरीर में हैं। इस एन्टीना में अन्तरिक्षीय संवेदनशीलता के सभी गुण व प्रारूप सुषुप्तावस्था में विद्यमान हैं। मानव मस्तिष्क प्रकृति का एक प्राकृतिक उत्पाद होने के कारण अन्तरिक्ष में कम्पायमान सभी आवृत्तियों को ग्रहण करने, संचारित करने, रूपान्तरित करने और उनका स्वरूप परिवर्तित करने में पूर्णतः सक्षम है।

आकाश में मेघ गर्जन से हुए विद्युतीय वज्रनाद को पृथ्वी तक कौन लाता है ? क्यों और कैसे एक अचानक अनजानी फुसफुसाहट कानों में तब पड़ती है जब हम नीरवता के वातावरण में अकेले बैठे होते हैं ? कौन यह सन्देश सचेतन मस्तिष्क को देता है कि कोई हमें पीछे से घूर रहा है और हम प्रश्नात्मक आँखें लिये हुए तुरन्त मुड़कर पीछे देखते हैं ? जिस प्रकार से इलेक्ट्रोकार्डियोग्राफ़ या इलेक्ट्रोएनसेफ़ेलोग्राफ़ या पॉलीग्राफ़ का प्रयोग करते समय शरीर की विद्युत धाराओं को पकड़ने के लिये इलेक्ट्रोड्स का प्रयोग किया जाता है, उसी प्रकार से अन्तरिक्षीय तरंगों के संचारण के लिये प्राकृतिक इलेक्ट्रोड्स की आवश्यकता होती है। *अन्तरिक्षीय एन्टीना*[2], जो कि ऊष्मीय, विद्युतीय, गुरुत्वीय और अन्य कई प्रकार की अन्तरिक्षीय तरंगों का संचारक है, अन्तरिक्षीय माध्यम में प्रलम्बित रहता है। यह *गतिशील*[3] एन्टीना उन अगिनत अदृश्य परिवर्तकों को वहन करता है जो सभी प्रकार की तरंगों के अन्तरिक्षीय रूपान्तरण में अनन्त परन्तु अत्यन्त प्रभावशाली रूप से व्यस्त रहते हैं। इस एन्टीना

के संवेदनशील अभिग्राहकों में किसी भी वस्तु अथवा तत्त्व से सूक्ष्मतम सम्भावित आवृति की निकली हुई छोटी-सी तरंग को भी पकड़ने की क्षमता होती है। आकाश में सभी अन्तरिक्षीय सन्देश इसी अन्तरिक्षीय परिवर्तक के बुने हुए धागों पर भ्रमण करते हैं। यही सार्वभौम परावर्तक सभी प्रकार की अपराध तरंगों को भी अन्तरिक्ष में एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने वाला संवाहक है। इसी एन्टीना के कारण अपराध तरंगें यद्यपि अपना प्रारूप परिवर्तित कर सकती हैं तथापि अपना गुण और विशेषता नहीं खोती हैं। उनमें विद्यमान विशिष्ट ऊर्जा सदैव ऋणात्मक, बुराई अथवा अपराध से भरी प्रकृति की रहती है।

प्राइमेट्स जीवों में मस्तिष्क का विकास स्वैच्छिक नियन्त्रण के एक अंग के विकास एवं संयोजन के रूप में हुआ है। साझेदारिता द्वारा अथवा प्रयास एवं त्रुटि द्वारा धीरे-धीरे सीखने की प्रक्रिया के द्वारा मानव मस्तिष्क ने प्रकृति की सभी विशेषताओं को या तो अपनाया या स्वयं को उनके अनुरूप ढाला और इस प्रकार से मनुष्य ने एक अत्यन्त ही संवदेनशील मानवीय एन्टीना का पोषण किया, जिसका निवास-स्थान मस्तिष्क और मानस के समरूप सम्मिश्रण के केन्द्र में है। अन्तरिक्षीय एन्टीना के सभी प्राकृतिक, अप्राकृतिक और अधिप्राकृतिक गुणों को अभिव्यक्त करने की योगयता रखते हुए भी मानव-एन्टीना सामान्यतः अपनी सम्पूर्ण क्रियाशीलता के मात्र दसवें भाग को ही प्रदर्शित कर पाता है। शेष अप्रदर्शित भाग यद्यपि अपने स्तर पर—और मनुष्य के चैतन्य ज्ञान के बिना—पूरी तरह सक्रिय रहता है तथापि वह मनुष्य की चेतना के स्तर पर उभरता नहीं है। जिस प्रकार से रेडियो एरियल दूरदर्शन की माइक्रोवेव को नहीं पकड़ पाता है, उसी प्रकार से मानवीय एन्टीना दूरदर्शन के एन्टीना की क्षमता एवं योग्यता रखते हुए भी केवल रेडियो एरियल की भाँति ही कार्य करता है और इसीलिये पौधों की भाषा तरंगों, अवरक्त और पराबैंगनी प्रकाश तरंगों तथा अवश्रव्य और अधिश्रव्य तरंगों को पकड़ने में असमर्थ रहता है। तब भी अपनी खरबों तन्त्र शाखाओं, पत्तियों और कपोलों सहित इस न्यूरेक्सिस रूपी वृक्ष के चैतन्य स्तरीय लगभग दस प्रतिशत सक्रिय भाग ने एक ऐसे केलाइडोस्कोपी विशिष्ट मानवीय चरित्र का निर्माण किया है जो अपने पूर्वजों और समकालीनों से कहीं आगे है। इस एन्टीना की प्रत्येक तन्त्र-कोशिका तरंगों को ग्रहण और संचारण करने की दोनों ही क्रियायें निष्पादित करती है; यद्यपि कुछ तन्त्र कोशिकाओं में रूपान्तरण का कार्य करने की भी शक्ति होती है। मानवीय मस्तिष्क में अन्तरिक्ष में प्रवाहित सभी प्रकार की तरंगों को ग्रहण करने की योग्यता होती है। यहाँ तक कि अन्तरिक्ष में किसी भी स्थान पर विकिरित और अन्तरिक्षीय एन्टीना द्वारा संचारित सूक्ष्मतम आवृति की तरंगों को भी ग्रहण करने की योग्यता मानवीय एन्टीना रखता है। क्या इस मानसिक योग्यता और सक्षमता के यदा-कदा उदाहरण एक साधारण व्यक्ति के भी दैनिक जीवन में देखने को नहीं मिलते हैं ?

बोध मस्तिष्क में संवेदन होने का परिणाम है। यह संवेदन उन विद्युत चुम्बकीय कम्पनों के कारण होता है जो तन्त्र कोशिकाओं में किसी प्रेरक के सम्पर्क में आने पर हुई विभिन्न रासायनिक प्रतिक्रियाओं से उत्पन्न होते हैं। पाँचों संवेदन अंगों की विद्युत की क्रियाशीलता का सम्बन्ध अन्तरिक्षीय विद्युत की पाँच विशेषताओं से होता है। सभी भौतिकीय बोध मस्तिष्क द्वारा पाँचों संवेदन अंगों के माध्यम से होते हैं, सुरुचिपूर्ण और बौद्धिक बोध मानस द्वारा विचारण और विश्लेषण के माध्यम से तथा आध्यात्मिक या आत्मिक बोध आत्मा द्वारा धनात्मक एकाग्रता के माध्यम से होते हैं। यहाँ तक कि समय और दूरी का वर्णन भी बोध अथवा अनुभव के आधार पर भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा भिन्न-भिन्न रूप से किया जाता है। ट्रेन से तय की गयी दूरी वायुयान से तय की गयी दूरी से समय के स्केल पर अधिक है जबकि मीटर-स्केल पर दोनों दूरियाँ लगभग समान हैं। समय के स्केल की दोनों दूरियों को अभिव्यक्त करने के लिये व्यक्तियों द्वारा अपने क्रमशः हुए अनुभव के आधार पर तुलनात्मक शब्दों का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार से अनुभूतियों एवं भावनाओं का बोध भी तुलनात्मक वस्तुओं के सम्बन्ध में हुए पिछले अनुभवों अथवा मान्यता प्राप्त अनुभवों के आधार पर तुलनात्मक रूप से किया जाता है। मानव एन्टीना की सम्पूर्ण संवदेनशीलता—किसी प्रेरक के प्रति एन्टीना की बोध करने, विश्लेषण करने और प्रतिक्रिया करने की क्षमता एवं योग्यता—उसके भीतर पहले से ही पैठी भौतिकता की संरचना, गुण और मात्रा पर निर्भर करती है। इस भौतिकता का प्रारूप भूतकाल में समय-समय पर मस्तिष्क में बाहर से प्रवाहित हुए अन्धविश्वासों, थोपी गयी धारणाओं, स्वीकृतियों, प्रेरित विचारों और परस्पर विरोधी अन्तर्विचारों से निर्देशित होता रहता है। तथ्यों के सम्बन्ध में अन्यथा अर्थ लगाने से हुई पिछली विकृत समझ भी बोध करने की क्षमता एवं शक्ति की संरचना करती है। संकुचित स्वभाव और अज्ञानता के कारण प्रकृति के नियमों से मनुष्य का सदैव संघर्ष रहता है, जिसका परिणाम भ्रमित और मिथ्या बोध होता है। यदि सूर्य विस्फोट द्वारा समाप्त हो जाये तो भी उसकी किरणें साढ़े आठ मिनट बाद तक पृथ्वी से दिखाई देती रहेंगी। दो ट्रेनों के एक ही दिशा में समानान्तर चलने से व आँख की सामान्य और अँगुली से आँख की पोर को दबाकर पैदा की गयी असामान्य गतियों से हुआ भिन्न बोध और एल. एस. डी. आदि का प्रयोग करने पर हुए दृष्टिभ्रम ऐसे उदाहरण हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि कभी-कभी मानव एन्टीना चेतन मन के स्तर पर भी वास्तविकता के अतिरिक्त कुछ अन्यत्र बोध करता है। मनुष्य की *संज्ञानात्मक योग्यताओं*[4] को संचालित करने वाले कारक भी बोध को नियन्त्रित करते हैं।

वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित और मान्यता प्राप्त मनुष्य की पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के अतिरिक्त छठी ज्ञानेन्द्रिय का भी अस्तित्व होना सार्वभौम रूप से स्वीकार किया गया है। यदि ऐसा है तो सातवीं, आठवीं, नवीं आदि ज्ञानेन्द्रियों का अस्तित्व और बोध

में उनके द्वारा भाग लिये जाने के तथ्य को मात्र आज की अज्ञानता के कारण कैसे नकारा जा सकता है ? एक निश्चित स्तर के मस्तिष्क का व्यक्तित्व मस्तिष्क के अन्य स्तरों के अस्तित्व के बारे में शंका कर सकता है परन्तु इससे यह स्थापित नहीं हो जाता कि मस्तिष्क के अन्य स्तरों का कोई अस्तित्व ही नहीं है। यदि एक नेत्रहीन प्रकाश को नहीं देख सकता तो क्या इससे प्रकाश का अस्तित्व ही समाप्त माना जायेगा ? एक बन्द आँखों वाले व्यक्ति के मस्तिष्क में विद्युत की सूक्ष्म स्तर की धारायें प्रवाहित करने पर उसके मानस पट पर स्वप्न के समान एक स्पष्ट दृश्य उभर आयेगा। स्वप्न में हम आँख और प्रकाश के बिना मानस दर्शन करते हैं। सोते समय इलेक्ट्रोएनसेफ़ेलोग्राफ़ पर अंकित की गयी विद्युतीय सक्रियता से यह पता लगता है कि स्वप्न के सन्देशों को पिछले अनुभवों के गोदाम द्वारा मस्तिष्क के दृक् क्षेत्र को सीधे भेजा जाता है। ये पिछले अनुभव मस्तिष्क के चेतन और अचेतन दोनों ही स्तरों पर एकत्रित किये गये हो सकते हैं। पूर्ण अचेतना में पड़ा कोमा का रोगी अपने सम्बन्धियों द्वारा तीमारदारी किये जाने पर तीव्र एवं बेहतर रूप से स्वास्थ्य लाभ करता है। शरीर की त्वचा में विद्यमान एरियल ग्रहों की तरंगों को पकड़ते हैं; अँगुलियों में पड़े नग एरियल के समान कार्य करते हुए उन तरंगों को सकेन्द्रित करते हैं। मानव चेतना और अचेतना के सभी स्तरों—पूर्ण, अर्ध, अधो, नवीन, अव, अधि और परा—द्वारा मनुष्य का एन्टीना बोध करता है और मनुष्य के मस्तिष्क के इन सभी स्तरों पर इन तरंगों की ऊर्जा कूटबद्ध होती है।

मनुष्य चेतना और अचेतना के सभी स्तरों पर लगातार और साथ-साथ बोध अपने एन्टीना के उस स्तर से लयबद्ध हुए चैनल की योग्यता और क्षमता के आधार पर करता है। किसी भी चेतन स्तर पर हुए बोध का उसे तुरन्त पता लग जाता है; जबकि अचेतन स्तर पर हुए बोध उसकी प्रत्यक्ष जानकारी के बिना होते रहते हैं। किसी असीम संवेदन का मस्तिष्क पर प्रवाह होने पर उसके मात्र एक सूक्ष्मतम भाग का ही हमें चेतन होता है। मस्तिष्क और *सेरीब्रल-कॉर्टेक्स*[5] की सक्रियता का अधिकतम भाग चेतना के स्तर तक पहुँचता ही नहीं है। यहाँ तक कि एक अकेले बोध के भी मानव एन्टीना के विभिन्न स्तरों पर भिन्न-भिन्न अवक्षेपण होते हैं। जब दो व्यक्ति मिलते हैं तो एक ही समय में दोनों के द्वारा एक-दूसरे का किया गया बोध दोनों ही व्यक्तियों के एन्टीना के कई स्तरों पर होता है। मानव एन्टीना कई शाखाओं का एक अभिग्राहक है जो सभी प्रकार की तरंगों को अपने प्रत्येक स्तर पर बोध करने की योग्यता रखता है।

एक ही कमरे में भिन्न आवृत्तियों पर नियत किये गये रेडियो भिन्न कार्यक्रम प्रसारित करते हैं। एक ही दूरदर्शन यन्त्र से भिन्न-भिन्न चैनल से भिन्न-भिन्न कार्यक्रम प्रसारित होते हैं। एक ही दूरदर्शन एन्टीना दूरदर्शन यन्त्र पर भिन्न-भिन्न रूप से चैनल नियत करने पर भिन्न-भिन्न तरंगों को पकड़ता है। मानव एन्टीना भी भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में तथा भिन्न-भिन्न रूप से नियत किये गये चैनलों के द्वारा

भिन्न-भिन्न प्रकार की तरंगों का बोध करता है। एन्टीना के अभिग्राहक विभिन्न मनोदशाओं में विभिन्न व्यवहार करते हैं। वही मस्तिष्क जो एक परिस्थिति में हँसाने वाली तरंगों को ग्रहण करके हमें हँसाता है, दूसरी परिस्थिति में रूलाने वाली तरंगों से प्रभावित होकर हमें रूलाता है। मैं विधि भली प्रकार एवं सरलता से समझ सकता हूँ, मनोविज्ञान रुचिपूर्वक समझता हूँ, गणित कठिनता से समझ पाता हूँ और इलेक्ट्रॉनिक्स किसी भी परिस्थिति में नहीं समझ सकता। व्यक्तिगत आवश्यकताओं के कारण भी बोध के प्रकार में अन्तर आ सकता है। मानव मस्तिष्क के चैनल कई पर्तों के होते हैं तथा मनुष्य के आन्तरिक *विद्युत चुम्बकीय सम्मिश्रण*[6] के अनुसार विभिन्न समयों में विभिन्न तरंगें पकड़ते और कम्पायमान करते हैं। मस्तिष्क स्थिर एवं विचलित दोनों ही प्रकृति का होता है; मानवीय एन्टीना ऋतुओं के समान है।

कोई चुटकुला सुनाए जाने पर आप हँसते हैं परन्तु मैं नहीं हँसता। मैं वर्षा ऋतु पसन्द करता हूँ, आप वसन्त और वे शरद। मैं प्रेम गीतों से प्रेम करता हूँ, आप रुदन से और वे हँसाने वालों से। अँगुलियों की छाप के समान ही कोई भी दो एन्टीना एक ही लय पर लयबद्ध नहीं हो सकते और न ही वे एक ही स्केल पर कम्पायमान हो सकते हैं। विभिन्न एन्टीना द्वारा विभिन्न तरंगों के किये गये विभिन्न बोध मुख्य रूप से मानव-शरीर के भीतर स्थित सभी तरंगों के विभिन्न सम्मिश्रणों के योग के कारण होते हैं। यद्यपि बोध की मात्रा, गुण और प्रकृति निर्धारित करने में आन्तरिक रसायनों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान होता है, एन्टीना के क्षेत्र में कम्पायमान तरंगों का संयोजन ही मूल रूप से अभिग्राहकों के स्वभाव को नियन्त्रित करता है। क्या बोध स्व-अर्जित स्व-पोषित नहीं होता ? समरूप जीन संगठन रखते हुए समरूप जुड़वाँ भी भिन्न चेतना और बोध प्रदर्शित करते हैं। क्या किसी व्यक्ति का केवल जीन संगठन ही उसके चेतन अनुभवों की विशिष्टताओं के लिये एकमात्र उत्तरदायी है ? क्या *आन्तरिक और शाश्वत अनुभव*[7] मात्र परिस्थितियों पर ही पूर्णरूपेण निर्भर हैं ? क्या बोध का मूल कारण *आन्तरिक और बाह्य तरंगों*[8] का एक ही स्केल पर लयबद्ध होना नहीं है ? चाहे प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से, परन्तु मनुष्य ही अपने स्वैच्छिक और अस्वैच्छिक बोध के लिये पूर्णतया उत्तरदायी है और यह उत्तरदायित्व उसके उस एन्टीना के गुण, अनुकूलनशीलता और ग्रहणशीलता पर निर्भर करता है जिससे वह लयबद्ध है।

ग्रीक भाषा ग्रीस के निवासी के लिये कठिन हो सकती है लेकिन आपके लिये कठिन नहीं भी हो सकती है। एक ही वाद्ययन्त्र से निकले कम्पन आपकी भावनाओं को जागृत कर सकते हैं लेकिन मेरी भावनाओं को जागृत नहीं भी कर सकते हैं। नीले, लाल और हरे रंग मनुष्य की आँख के मूल अभिग्राहक हैं परन्तु विभिन्न रासायनिक मिश्रणों के कारण आँख के कोन में दोष होने के कारण कोन से मस्तिष्क को रंग के बारे में भिन्न सन्देश जाता है और इसीलिये उसी तरंग के रंग के बारे में रंगान्ध द्वारा

किया गया बोध सामान्य आँखों वाले द्वारा किये गये बोध से भिन्न होता है। इसी प्रकार से एक परीक्षण में पचहत्तर प्रतिशत व्यक्तियों ने फ़ेनिल थायोकार्बामाइड का स्वाद अत्यन्त तीखा बताया, जबकि पच्चीस प्रतिशत ने उसे स्वादहीन पाया। ऐसे ही, अट्ठारह प्रतिशत लोगों ने हाइड्रोजन सायनाइड में कोई भी गन्ध नहीं पाई। एक ही प्रेरक उसी अनुबोध की भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के अंगों में भिन्न-भिन्न रासायनिक प्रतिक्रियायें कारित करता है जिससे मस्तिष्क के सम्बन्धित क्षेत्र को भिन्न-भिन्न तरंगें संचारित होती हैं। एक ही आवृति की तरंगें भिन्न-भिन्न एन्टीना पर भिन्न-भिन्न प्रभाव डालती हैं। एक ही वस्तु से एक ही समय निकली हुई तरंगें भी भिन्न-भिन्न एन्टीना के भिन्न-भिन्न चेतन और अचेतन चैनल पर अवक्षेपित हो सकती हैं। गाली दिये जाने पर मैं क्रोध प्रदर्शित कर सकता हूँ, आप क्रोधित हो सकते हैं परन्तु ऐसा हो सकता है कि उसका प्रदर्शन न करें और वे इससे अप्रभावित रह सकते हैं। यहाँ तक कि विचारों, अनुभूतियों, भावनाओं तथा इच्छाओं से विकिरित तरंगें भी भिन्न-भिन्न एन्टीना के भिन्न-भिन्न चेतन और अचेतन स्तरों द्वारा भिन्न-भिन्न मात्रा, श्रेणी, अंश और स्तर में अनुबोधित की जाती हैं। मानसिक रूप से विक्षिप्त व्यक्ति का एन्टीना भी इसी प्रकार से तरंगों का बोध करता है, यद्यपि उसकी मात्रा, श्रेणी, अंश और स्तर सामान्य व्यक्ति के एन्टीना की मात्रा आदि से भिन्न होता है। उसकी स्थिति में चेतना का स्तर और मात्रा भी भिन्न होती है। दो विक्षिप्त व्यक्तियों द्वारा किया गया बोध भी उनकी मानसिक कुव्यवस्था की प्रकृति, स्तर और मात्रा के अनुसार भिन्न होता है। एक विक्षिप्त भी वही आपराधिक कार्य देखता है परन्तु वह उसकी अपराधता का बोध चेतना के किसी भी स्तर पर नहीं कर पाता। संवेदिक बोध की प्रकृति और गुण हमारे *सूचना पथों*[9] की प्रकृति और गुण तथा उनके मध्य हुई अन्तःक्रियाओं पर निर्भर करता है। केन्द्रीय स्नायु तन्त्र की प्रकृति और गुण भी इसमें अपना योगदान देता है। वस्तुओं, क्रियाओं आदि का अवधारण पिछली यादों, विचारों आदि से बने हमारे अनुबोधक गुणक पर निर्भर रहते हुए हमारे भीतर से ही होता है। एक-सी परिस्थितियों, वातावरण और पृष्ठभूमि में रहते हुए, मैं सामाजिक और मौलिक मानकों का अनुपालन नहीं करता हूँ परन्तु मेरा भाई करता है। जितना ही विकृत हमारा *अनुबोधक गुणक*[10] होगा, उतना ही अस्त-व्यस्त हमारा बोध होगा। बोध पूर्णरूपेण एक व्यक्तिगत तथ्य अथवा घटना है।

आधे भरे-आधे खाली गिलास का बोध-सिद्धान्त इसके अतिरिक्त और क्या इंगित करता है कि एक ही वस्तु से संचारित किरणों से दो व्यक्ति भिन्न-भिन्न रूप से प्रभावित होते हैं, जबकि दोनों ही पूरे गिलास को देखते हैं ? क्या आधे भरे अवलोकन करने वाले व्यक्ति के एन्टीना पर आधे खाली गिलास से निकली तरंगों की अपेक्षा आधे भरे गिलास से निकली तरंगें अधिक प्रभाव नहीं डालती हैं ? और क्या आधे खाली अवलोकन करने वाले व्यक्ति की स्थिति में विपरीत स्थिति नहीं होती है ? यदि घण्टियों की लयबद्ध ध्वनि के बारे में कोई शिकायत करता है तो क्या ऐसा इसलिये नहीं है कि

घण्टियों की लयबद्ध गति से निकलती तरंगें उस व्यक्ति के संगीत के एन्टीना के स्थान पर शोर के एन्टीना पर केन्द्रित हो रही हैं ? क्या ऐसा नहीं है कि हम उसी का बोध करते हैं जिससे अपने आपको लयबद्ध कर लें; और चेतन या अचेतन रूप से हम उसी से अपने आपको लयबद्ध करते हैं जिसका बोध करने की हम इच्छा रखते हैं ? एक ही वस्तु देखकर भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न संवेदिक बोध करते हैं; प्रत्येक प्रेरक संवेदिक अंगों के जीवद्रव्य में विशिष्ट संवेदन कारित करता है जिससे *न्यूरॉन*[11] आदि की विशिष्ट रासायनिक श्रृंखलाओं के रथ पर संवेदिक स्नायुओं के द्वारा मस्तिष्क को उक्त विशिष्ट संवदेन के बारे में सन्देश जाता है। ये संवेदन जीवद्रव्य में हुए उत्तेजन की प्रकृति के अनुसार भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की मस्तिष्क कोशिकाओं में भिन्न-भिन्न प्रतिक्रियायें कारित करते हैं। *जीवद्रव्य*[12] की विशिष्टता *डाईऑक्सीराइबोन्यूक्लिक एसिड*[13] के भिन्न-भिन्न सम्मिश्रणों के कारण भिन्न-भिन्न होती है। चूँकि इस प्रकार का उत्तेजन होने पर भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में मुक्त हुई ऊर्जा की मात्रा और तरंगों का कम्पन भिन्न-भिन्न होता है, अतः उनके द्वारा किया गया बोध भी भिन्न होता है। कभी बोध का प्रकार समान होता है और केवल अंश या मात्रा में भिन्नता होती है, कभी प्रकार में भी भिन्नता होती है; इसलिये बोध की गयी वस्तु नहीं वरन् बोध करने वाला व्यक्ति ही बोध के गुण, प्रकार, प्रकृति और अंश का निर्धारण करता है। इसीलिये रिपन के बिशप ने यह अवलोकित करते हुए कि आत्मा, मस्तिष्क और भौतिकता के बीच हो रही असामंजस्यता भी मानव बोध की पोषक है, *वैज्ञानिक अवकाश*[14] घोषित किये जाने का अनुरोध किया था।

एक ही व्यक्ति के जीवद्रव्य में भी दो उत्तेजन कभी भी समरूप नहीं रहे हैं, चाहे वे उत्तेजन एक ही वस्तु का एक ही समय में बोध करने से कारित हुए हों। भिन्न-भिन्न व्यक्ति एक ही विचार, वस्तु, कार्य आदि से भिन्न-भिन्न संवेदन इसलिये पकड़ते हैं क्योंकि उनके विद्युत चुम्बकीय नमूने भिन्न होते हैं। तब क्या एक ही प्रेरक से संवेदित होने पर भी भिन्न-भिन्न बोधकारित होने के लिये हमारा अन्तःकरण ही वास्तव में उत्तरदायी नहीं है ? जैसा आपका एन्टीना होगा, वैसा ही आप बोध करेंगे। यद्यपि *सामान्य रूप से स्वीकृत शाश्वत बोध*[15] और *वंशागत सामूहिक चेतना*[16] ही सामान्य बुद्धि है, क्या सामान्य बुद्धि के अनुसार किये गये सामान्य बोध भी अपने पूर्व आन्तरिक अनुभवों और कई अन्य आन्तरिक कारणों के आधार पर विभिन्न व्यक्तियों द्वारा भिन्न-भिन्न रूप में नहीं होते हैं ?

मानव एन्टीना, जो मात्र तरंगों का ही अभिग्राहक, परावर्तक, आकर्षित करने वाला, संचारक, परिवर्तक और रूपान्तरण करने वाला है, मस्तिष्क के वेग के अनुसार अपनी धुरी पर सभी दिशाओं में निराकार रूप से घूमता रहता है। इसमें एक ओर स्थाई सामंजस्यता है तथा दूसरी ओर चिरन्तर लचीलापन या चैनल की परिवर्तनशीलता भी है। मस्तिष्क के एक स्तर पर अवक्षेपित तरंगें दूसरे स्तरों पर या तो तुरन्त उसी

समय या मूल बोध के बाद किसी भी समय आन्तरिक रूप से संचारित हो सकती हैं। यह अन्तःपरिवर्तिता अवचेतना से पराचेतना, तथा विपरीत, सभी स्तरों पर कभी भी हो सकती है परन्तु तरंगों का मूल अवक्षेपण उसी स्तर पर होता है जो अवक्षेपण के समय सर्वाधिक सक्रिय व योग्य है। दार्शनिक एन्टीना दार्शनिक अथवा कारक तरंगों का बोध करेगा, नक्षत्रीय एन्टीना नक्षत्रीय तरंगों, वैज्ञानिक एन्टीना वैज्ञानिक तरंगों, मानवीय एन्टीना मानवीय तरंगों, काव्यात्मक एन्टीना काव्यात्मक तरंगों, संगीतमय एन्टीना संगीतमय तरंगों, रोमाण्टिक एन्टीना रोमाण्टिक तरंगों, घृणा का एन्टीना घृणा की तरंगों, अच्छाई का एन्टीना अच्छाई की तरंगों तथा बुराई का एन्टीना बुराई की तरंगों का बोध करेगा। क्या आपराधिक एन्टीना जिसका अपराधता (प्राकृतिक व्यवस्थाओं में कुव्यवस्था करना) के प्रति पूर्णरूपेण झुकाव है, अपराध तरंगों, और केवल अपराध तरंगों ही, का बोध नहीं करेगा ?

एन्टीना के जितने अंश का झुकाव अपराधता की ओर होता है, आपराधिक एन्टीना में अपराध तरंगों को आकर्षित करने की उतनी ही गुरुत्वता रहती है। इसी प्रकार से एन्टीना में अपराधता की जैसी प्रकृति और मात्रा होती है, वैसी ही उसकी उन्हीं प्रकृति और मात्रा की अपराध तरंगों को आकर्षित करने की योग्यता होगी। एक चोरी की ओर झुकाव रखने वाला एन्टीना हत्या अथवा बलात्कार की ऋणात्मक ऊर्जा से भरी अपराध तरंगों का आक्रमण होने पर भय से काँपने लगेगा। इसके विपरीत होने पर भी ऐसा ही होगा, जब तक कि एन्टीना के चैनल आक्रमणकारी तरंगों से लयबद्ध न हो जायें। एक जालसाज़ी का विशेषज्ञ पॉकेटमारी के व्यवसाय को अपनी गरिमा से निम्न स्तर का समझेगा। जब एक प्रकृति का अपराध विशेषज्ञ अस्थाई रूप से दूसरी प्रकृति का कोई अपराध करता है तो उसका आपराधिक एन्टीना ऐसा अपराध करते समय उस दूसरी प्रकृति की अपराध तरंगों से अस्थाई रूप से लयबद्ध हो जाता है। *सेरीब्रम के टेम्पोरल लोब*[17] के विद्युत रासायनिक प्रेरण से पिछली भूली हुई आपराधिक घटनाओं, विचारों आदि की विस्तृत याद आ जाना भी आपराधिक एन्टीना की अपराधता की प्रकृति में परिवर्तन आने का कारण हो सकता है। अचेतन स्तर पर बोध की हुई अपराध तरंगें जिनकी ऋणात्मक ऊर्जा पहले से ही गोदाम में संचित रही हो, भी उसी प्रकार की अपराध तरंगों के एन्टीना के चेतन स्तर पर हुए आक्रमण के कारण पुनर्कम्पित हो सकती हैं। अपराध तरंगों का संश्लेषण आपराधिक एन्टीना के भी किसी स्तर पर हो सकता है। एन्टीना के चैनल संश्लेषक भी होते हैं।

आपराधिक एन्टीना, आपराधिक विकृति के उदाहरणों के अतिरिक्त, सामान्यतया मानसिक रूप से कुव्यवस्थित, विकलांग या मन्द एन्टीना नहीं होता है। वरन् वह पूर्णरूपेण सन्तुलित, मनोवैज्ञानिक रूप से व्यस्क और चैतन्य रूप से जानकार होता है। *आन्तरिक अपराध तरंगों*[18] द्वारा बुने गये आपराधिक धागे एन्टीना की अपराधता को बढ़ाने, कम करने, बनाए रखने या परिवर्तित करने में बाह्य अपराध तरंगों से भी

प्रभावित होते हैं। मानसिक बाल्यावस्था, या अधिक-से-अधिक मानसिक किशोरावस्था, के बाद बाह्य अपराध तरंगों के बल की तुलना में आन्तरिक अपराधता का बल एन्टीना को अधिक स्थायित्व प्रदान करता है। आन्तरिक एवं बाह्य अपराध तरंगों का आपराधिक एन्टीना पर हुआ संयुक्त प्रभाव ही मानव-मस्तिष्क का *आपराधिक सन्तुलन*[19] निश्चित करता है और उसे बनाये रखता है।

यद्यपि आन्तरिक और शाश्वत चैतन्य आपराधिक अनुभव किसी ज्ञानेन्द्रिय को प्रेरित करने पर प्राप्त होते हैं, अपराधता का बोध, अन्य अनुबोधों की भाँति, संवेदिक के अतिरिक्त अवसंवेदिक, परासंवेदिक और नवसंवेदिक स्तरों पर भी होता है। जितना अधिक मानव मस्तिष्क भौतिकता से भरा होता है, उतनी ही अधिक अपराधता से उसका एन्टीना ग्रसित होता है क्योंकि आपराधिक एन्टीना का निवास-स्थान भौतिकीय मस्तिष्क के सभी भागों के निम्नतम स्तर में होता है। स्वप्न के समान ही अपराधता का बोध ज्ञानेन्द्रियों के तुरन्त सहयोग के बिना भी हो सकता है। क्या हम भय, प्रसन्नता आदि का बोध पाँचों इन्द्रियों के बिना भी नहीं करते हैं ? अपराध तरंगों का बोध भी मस्तिष्क के मात्र संवेदिक स्तर पर ही नहीं होता है, इसलिये बिना उसकी जानकारी के ही किसी व्यक्ति के शरीर की ऋणात्मक विद्युतधारायें उसके मस्तिष्क में स्थित आपराधिक एन्टीना के बीजों को अंकुरित कर सकती हैं—यद्यपि ऐसा कभी-कभी ही होता है। सामान्यतः, यदि आपराधिक एन्टीना की *आन्तरिक वृद्धि*[20] की चेतन स्तर पर प्रत्यक्ष स्वीकृति नहीं भी है तो भी उसके बारे में परोक्ष स्वीकृति सदैव ही रहती है। रेडियो तरंगें आयनोस्फ़ियर से परावर्तित हो जाती हैं परन्तु दूरदर्शन तरंगें माइक्रोवेल होने कारण किसी उपग्रह से ही परावर्तित होती हैं और एक उपयुक्त दिशा में नियत एन्टीना पर ही केन्द्रित होती हैं। आपराधिक एन्टीना का *पर्याप्त अनुकूलन*[21] भी उस पर अपराध तरंगों के अवक्षेपण के लिये आवश्यक है।

ऐन्द्रिक बोध दोनों ही सक्रियताओं पर आधारित होते हैं, बाह्य—किसी वस्तु अथवा तथ्य का सरल अवलोकन—और आन्तरिक—मस्तिष्क से उस अवलोकित तथ्य की अन्तःक्रिया। यह सर्प है; मुझे इससे भयभीत होना चाहिए। संवेदिक आपराधिक बोध भी इसी प्रकार अवलोकित एवं विश्लेषित किये जाते हैं। अगर कहीं लूट हो रही है तो मैं लूटकारों का साथ दे सकता हूँ जबकि आप लूटे जा रहे व्यक्ति को बचाने का कार्य कर सकते हैं। अपराध तरंगों का अन्तरिक्षीय बादल सारे खेत को सींचता है, केवल आपराधिक एन्टीना ही आपराधिक उपज के उत्पादन में सहायक होता है। ये बादल कभी-कभी सुषुप्तावस्था में पड़े आपराधिक एन्टीना को भी जगा देता है।

सक्रिय आपराधिक एन्टीना—जहाँ सभी आपराधिक आशयों का जन्म होता है और जो अपराध तरंगों का चेतन और अचेतन के किसी या सभी स्तरों पर बोध करने के योग्य है—अपराध कारित होने के द्वितीय अन्तरिक्षीय कारण के रूप में मस्तिष्क-मानस सम्मिश्रण में कहीं पर निवास करता है।

आपराधिक आत्मा

अन्तरिक्ष का मूल कारण उत्पन्न होने पर मूल अचल सघन शून्यता, जो अभी भी पूरे अन्तरिक्षीय साम्राज्य पर राज करती है, ने सम्पूर्ण अन्तरिक्षीय कोख में और तदोपरान्त उससे भी परे अगिनत अन्तरिक्षीय उत्पत्तियों को स्पन्दित किया। उस अनिर्मित ऊर्जा, जिसमें धनात्मक और ऋणात्मक दोनों ही प्रकार के निर्माण की योग्यता थी, ने अपने तारों को धीरे-धीरे लयबद्ध करते हुए एक ओर अपनी मूल प्रकृति को भी बनाए रखा और दूसरी ओर प्रकृति में विद्यमान निर्मित वस्तुओं का निर्माण भी जारी रखा। इस अनिर्मित शून्यता से निर्मित सभी उत्पादों—चाहे वह जितने भी सूक्ष्म हों—में उसके मूल प्रारूप का कुछ-न-कुछ ऐसा अंश अवश्य है जिसमें अनिर्मित होते हुए भी द्वैत रचना करने की पूर्ण योग्यता है। भौतिक रूप से गुरुत्वतम् स्तर के उत्पादों में भी उस पैत्रिक शून्यता की कुछ-न-कुछ मात्रा विद्यमान है। अनिर्मित शून्यता का यही अंश जो कि सार्वभौम परम् सम्राट है, सभी सृष्टियों का सृष्टिकर्ता तथा सभी अन्तिम परिणामों का मूल कारण है। इसकी प्रथम वंशज प्रकृति की आत्मा अर्थात् अन्तरिक्षीय आत्मा है।

प्रकृति की सभी घटनाओं को रचित करने की क्षमता रखने वाला वह *प्रारम्भिक पूर्ण*[1] कालानुक्रम में सृष्टि सम्बन्धी अपनी सभी क्षमताओं को प्रदर्शित करते हुए व्यवस्थित रूप से अन्तरिक्ष के सभी भागों में पहुँचा। वह बादलों की गरज के साथ कम्पायमान रहा और पर्वतों के साथ स्थिर भी रहा; वह रेंगने वालों के साथ रेंगा और उड़ने वालों के साथ उड़ा। सभी जाने और अनजाने कारणों का प्रारम्भिक एवं मूल कारण होते हुए वह कुचलने वालों और कुचले हुओं में समान भाव से विलीन हुआ। उसने अपना निर्माण विभिन्न वस्तुओं में विभिन्न अंशों में किया। इस *पराप्राकृतिक ऊर्जा*[2] के अलौकिक रूप से निर्मित अभौतिक तरंगों के एक विशिष्ट सम्मिश्रण ने जीवन को जन्म दिया और इसी मूल ऊर्जा के शरीर से निकल जाने पर भौतिकीय मृत्यु हुई। अन्तरिक्षीय केन्द्र पर विद्यमान *सर्वोच्च विवेक*[3] से अलग होने और *चौरासी लाख पड़ावों*[4] पर विश्राम करने के उपरान्त अन्त में यह मानव हृदय में टिमटिमाई और मानव आत्मा कहलाई।

एक मनुष्य अपने सम्पूर्ण जीवन में वही जीन कोड और जीन सम्मिश्रण रखते

हुए भी विभिन्न परिस्थितियों और समय में भिन्न-भिन्न व्यवहार रखता है। मात्र यही तथ्य हमारे भीतर स्थित जीनोम से परे किसी उस निराकार निष्क्रिय का अस्तित्व होने की पुष्टि करता है जिसका शरीर और मस्तिष्क पर नियन्त्रण है। मृतक को उत्तर-दक्षिण दिशा में रखकर जलाया या गाड़ा जाता है। क्या यह शरीर को वास्तव में जलाने अथवा गाड़ने से पूर्व उसमें स्थित लौह-तत्त्व को पुनः चुम्बकित करने का अन्तिम प्रयास नहीं है ? क्या चुम्बकित चेन कुछ व्यक्तियों का रक्तचाप नियन्त्रित करने में सहायक नहीं रही है ? यद्यपि अस्थि रोगों के विशेषज्ञों के अनुसार गठिया रोग की चिकित्सा में चुम्बक का कोई भी योगदान नहीं है, तथापि क्या इस रोग का चुम्बकीय चिकित्सा द्वारा सफ़लतापूर्वक इलाज नहीं किया जा रहा है ? प्रवासी पक्षी पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र की धाराओं का संवेदन कर लेते हैं और अपने शरीर में चुम्बकत्व होने के कारण सहस्त्रों मील लम्बी यात्रा सही दिशा में कर लेते हैं।

मनुष्य के अस्तित्व के समान, प्रत्येक जीवित कोशिका का भी तीन स्तरीय अस्तित्व है—अस्तित्वात्मक अव-अस्तित्वात्मक एवं परा-अस्तित्वात्मक। क्या चुम्बकत्व की उपस्थिति के कारण ही प्रत्येक जीवित कोशिका से विवेक नहीं झलकता ? क्या मनुष्य के भीतर के इसी सामूहिक विवेक के कारण ही उसके द्वारा किये गये किसी भी कार्य की प्रकृति निर्धारित नहीं होती ? जिस प्रकार से बोध ज्ञानेन्द्रियों और न्यूरॉक्सिस में प्रवाहित विद्युत धाराओं से नियन्त्रित होता है, क्या उसी प्रकार से भावनायें, अनुभूति, इच्छा, इच्छा-शक्ति, साहस आदि सूक्ष्मतर निराकार घटनायें शरीर में सभी स्थानों पर अपकेन्द्रित और साथ ही कुछ विशेष स्थानों पर सकेन्द्रित चुम्बकत्व के पूर्ण योग से शासित नहीं होती हैं ? पत्थर में अग्नि और पुष्प में सुगन्ध के समान ही मनुष्य की आत्मा सम्पूर्ण मानव-शरीर में विलीन रहती है।

यद्यपि मनुष्य की आत्मा—मनुष्य के शरीर में पाया जाने वाला स्थिर पराचुम्बकत्व—सर्वोच्च आत्मा—कल्पना से परे अत्यन्त ही उच्च कोटि का पराचुम्बकत्व—का एक अंश है, तथापि उसने अपना प्रारम्भिक गुण और व्यवस्था खो दी है। तब भी उसने सर्वोच्च आत्मा की सभी क्षमतायें और विशेषताएँ अपने में सुरक्षित रखी हैं—मनुष्य की आत्मा में ये क्षमताएँ और विशेषताएँ तुलनात्मक रूप से निम्न स्तर की हैं। मनुष्य की आत्मा में भी प्रकृति की सभी घटनाओं और तथ्यों को प्रदर्शित करने की पूर्ण योग्यता और धनात्मक व ऋणात्मक दोनों ही प्रकार की रचनात्मक क्षमता है—यद्यपि इसकी श्रेणी भी सर्वोच्च आत्मा की योग्यता और क्षमता की तुलना में निम्न है। यद्यपि मनुष्य और पूर्णता दोनों ही किनारों पर व्यवस्था का प्रकार और प्रकार की योग्यता एक ही है तथापि उस व्यवस्था की श्रेणी और श्रेणी की योग्यता दोनों किनारों पर भिन्न है। परम आत्मा की तुलना में मानव आत्मा अन्तरिक्षीय गर्भ से मनुष्य के गर्भ तक की गयी अपनी *यात्रा*[5] में प्रकृति से हुई अन्तःक्रियाओं के कारण निम्न कोटि की है।

एक जीवित कोशिका की और अन्तरिक्ष की व्यवस्था में समरूपता है; जो बल अन्तरिक्ष के भीतर उसे अखण्ड रखने के लिये कार्य करते हैं, वही बल जीवित कोशिका को सुसम्बद्ध रखने के लिये उसी व्यवस्था से कार्य करते हैं। जीवित कोशिका में तनाव बनाये रखना *रिक्तिका*[6] का कार्य है; अन्तरिक्षीय कोशिका में तनाव बनाए रखना उसका कार्य है जो अन्तरिक्षीय कोशिका के भीतर है। तब क्या सामूहिक आत्मा का विश्राम-स्थल *मानव रिक्तिका*[7] के भीतर नहीं है ? तब क्या आत्मा ही शरीर को नहीं बाँधे रखती है ? क्या आत्मा का स्थाई प्रयाण शरीर के स्थाई रूप से क्षय और उसे नष्ट करने के लिये पर्याप्त नहीं है ? क्या जीवित कोशिका में अन्तरिक्षीय व्यवस्था का संघटन जीवन और असंघटन मृत्यु नहीं है ? जिस प्रकार से प्रत्येक भौतिकता के पीछे अभौतिक रूप से निर्मित तरंगें हैं, उसी प्रकार से प्रत्येक तरंग के पीछे शून्यता है जो अनिर्मित स्थिर ऊर्जा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। इसलिये, आत्मा वह बलवान सम्राट है जो तरंगों की वल्गु द्वारा नियन्त्रित पदार्थ के रथ पर यात्रा करती है और निर्मित भौतिक, अर्ध-भौतिक और अभौतिक अन्तरिक्ष, मुझ, आप और सब पर राज्य करती है। *सर्वशक्तिमान ऊर्जा*[8] के समान मनुष्य की आत्मा *आन्तरिक दुनिया*[9] पर शासन करती है।

जीवित कोशिकाओं की आन्तरिक स्थिर विद्युत, चुम्बकत्व और विद्युत चुम्बकीय तरंगें विभिन्न सम्मिश्रणों की होती हैं। मानव कोशिका का अभौतिक तन्तुक भिन्न-भिन्न कोशिकाओं में भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है और इस प्रकार संयुक्त रूप से एक केलाइडोस्कोप रूपी ढाँचे का प्रभाव प्रदान करता है। मानवीय पैमाने पर उत्कृष्ट, निकृष्ट और सामान्य स्तर की आत्मायें होती हैं। क्या मानवीय पैमाना प्राकृतिक पैमाने से भिन्न हो सकता है ? प्रतिध्वनि की कथा के अनुसार ही मानव आत्मा की कथा है; उसमें जो डाला जायेगा, वही समान बल से विकिरित होगा। विचार, बोध, भावना, अनुभूति आदि की प्रतिक्रियायें आन्तरिक भी होती हैं। यदि कोई व्यक्ति अपने स्वत्व के प्रति चैतन्य है तो सर्वोच्च आत्मा और उसकी आत्मा एक स्तर की है; यदि वह अपने मानस के प्रति चैतन्य है तो उसकी आत्मा सर्वोच्च आत्मा का एक अंश है; यदि वह मात्र अपने शरीर के प्रति चैतन्य है तो उसकी आत्मा भौतिकता की दास है। सामान्य आत्मा अपना पोषण भौतिकता के बन्धनों में करती है।

जीवित कोशिका के तथाकथित रिक्त स्थान में सुव्यवस्था जीवन है, कुव्यवस्था मृत्यु है; आत्मा शून्य है। बाह्य अथवा आन्तरिक प्रेरणा से झील का शान्त व स्थिर जल गतिशील हो जाता है और उसकी तरंगें सभी दिशाओं में तब तक कम्पायमान होती रहती हैं जब तक कि प्रेरणा का प्रभाव समाप्त न हो जाये; आत्मा झील के समान है। घड़ी, दिन और रात के बारह बजने का समय एक ही प्रकार से बताती है परन्तु भिन्न समयों पर (दिन और रात के बारह बजने पर) भिन्न सन्देश प्रसारित करती है; आत्मा कभी-कभी घड़ी के समान व्यवहार करती है। अन्तरिक्ष में विद्यमान

सम्पूर्ण भौतिकता भी उसकी प्यास नहीं बुझा सकती, आत्मा समुद्र है। भौतिकता की मात्र एक बूँद उसकी इच्छा-पूर्ति के लिये पर्याप्त हो सकती है; आत्मा सीप है। यह उतनी सुदृढ़ है जितनी चट्टान और उतनी ही क्षणभंगुर है जितना पानी का एक बुलबुला। आत्मा शून्यता है; तथापि उसमें सब कुछ निर्मित और नष्ट करने की क्षमता है।

मानव-शरीर निर्मित भौतिकता (परमाणु) निर्मित अभौतिकता (ध्वनि, विद्युत चुम्बकीय धारायें आदि) और अनिर्मित शून्यता (पराचुम्बकत्व) का संश्लेषित उत्पाद है। मानव रक्त, जो मानव-शरीर का सर्वाधिक तीव्रगामी भौतिक पदार्थ है, में विद्युत चुम्बकीय तरंगों का सर्वाधिक बल होता है। अतः यही रक्त मानव शरीर में आत्मा का भी वाहक होता है। ऑक्सीजन का संवाहक होने के कारण यह शरीर की प्रत्येक कोशिका में जीवन प्रवाहित करता है तथा लाल एवं श्वेत रक्त कणिकाओं के माध्यम से यह शरीर की प्रतिरोध शक्ति को भी घटाने, बढ़ाने व बनाए रखने में सहायक होता है। यह शरीर के तापक्रम का नियन्त्रण और शरीर की प्रत्येक इकाई से कार्बन डाई ऑक्साइड को एकत्र करने वाला होता है। दूसरा कोई भी ऊतक शरीर में इतना सर्वव्यापी नहीं होता जितना कि मानव रक्त होता है। मानव आत्मा पूरे जीवित शरीर में फैली रहती है।

अन्य उपयोगी वस्तुओं की भाँति मानव आत्मा ने भी विभिन्न अंगों की संरचना और कार्य के महत्त्व के आधार पर मानव-शरीर में अपने गोदाम बना रखे हैं। यह श्वास नलिका के भीतर हो रहे ज्वार-भाटे के साथ नृत्य करती है; यह प्रजनन अंगों का मंथन करती है; यह सभी प्रकार के बोध, विचारण, विश्लेषण आदि के लिये मनुष्य के मस्तिष्क को संचालित करती है। यद्यपि सक्रिय स्नायु-कोशिका विहीन अंगों में चैतन्य स्तर पर कोई भी अनुभूति नहीं होती है, बढ़े हुए बालों और नाखूनों में रक्त की आपूर्ति न होने के कारण उनमें किसी भी स्तर पर कोई भी अनुभूति—चाहे वह शीत, ऊष्मा अथवा दर्द की हो—नहीं होती है। शीत, ऊष्मा अथवा दर्द की अनुभूति किसी भी स्तर पर शरीर की किसी भी उस सूक्ष्मतम कोशिका अथवा विशालतम अंग—चाहे वह आन्तरिक हो अथवा बाह्य—में होती है, जिसमें रक्त का प्रवाह होता है। क्या रक्त में विद्यमान आत्मा—और केवल स्नायु ही नहीं—कुछ अनुभूतियों के लिये उत्तरदायी नहीं है ? क्या विवेक—सर्वशक्तिमान ऊर्जा का न्यूनतम अंश—रक्त की धाराओं के साथ नहीं बहता है ? यद्यपि कनिष्का में रक्त की कुछ मात्रा की नियमित रूप से आपूर्ति होती रहती है और पूरी रात वहाँ दर्द का अनुभव हो सकता है, क्या कोई भी एक क्षण के लिये भी उस अंगुली में प्रसन्नता, दुःख, घृणा या क्रोध का अनुभव कर सकता है ? क्या ऐसा इसलिये नहीं है कि कनिष्का में एकत्रित रक्त द्वारा ले जाया गया विवेक उसमें ऐसी भावना या अनुभूति जागृत करने के लिये अपर्याप्त है ? क्या प्रसन्नता, दुःख, घृणा अथवा क्रोध की

अनुभूतियाँ प्रत्यक्ष रूप से स्नायुओं से नहीं वरन् स्थिर आत्मा और रक्त की धाराओं में प्रलम्बित विद्युत चुम्बकीय धाराओं से जुड़ी हुई नहीं हैं ?

शरीर में एक समय में एकत्रित रक्त–जो कि अच्छे (उपयोगी) और बुरे (व्यर्थ) दोनों ही उत्पादों का वाहक है–की सर्वाधिक मात्रा हृदय में होती है। हृदय के दाहिने आलिन्द में विद्युतीय चिन्गारी ज्वलित होने के कारण उसके दोनों ऊपरी प्रकोष्ठों में संकुचन होता है; हृदय मस्तिष्क से भी अधिक शक्तिशाली विद्युत तरंगें उत्पन्न करता है। तब क्या मानव हृदय ही वह गोदाम नहीं है जिसमें मनुष्य की सम्पूर्ण आत्मा अपनी सभी योग्यताओं और क्षमताओं सहित मानव-शरीर में एक समय में एक स्थान पर शून्यता की अधिकतम मात्रा लिये हुए निवास करती है ? हृदय-रोगियों को अधिक उत्तेजित न होने की सलाह दी जाती है तथा मानवीय भावनाओं का अधिक तनाव उनके लिये हानिकारक हो सकता है। तब क्या मनुष्य का हृदय सभी निराकार भावनाओं और अनुभूतियों का गोदाम नहीं है ? क्या यह हृदय ही नहीं है जो निराकार की अनुभूति की योग्यता रखता है–चाहे वह मानस से किसी प्रकार की अन्तःक्रिया की सहायता से ऐसा करता हो ? मानव आत्मा निराकार भावनाओं, अनुभूतियों और इच्छाओं को ग्रहण और अर्जित करती मनुष्य के हृदय में ही संकुचित ओर प्रसारित होती रहती है।

यद्यपि हृदय और आत्मा का निवास-स्थल एक ही है तथापि यह आवश्यक नहीं है कि दोनों की प्रकृति भी एक ही हो। एक दुर्बल हृदय में शक्तिशाली आत्मा और शक्तिशाली हृदय में दुर्बल आत्मा का निवास भी हो सकता है। हमारे भीतर *सरीसृप*[10] और *उभयचर*[11] दोनों का ही निवास है। हमारे भीतर लकड़बग्घा हँसता है और सिंह दहाड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा में जीवित वस्तुओं की चौरासी लाख श्रेणियाँ सामान्यतः सुषुप्तावस्था में पड़ी रहती है। मनुष्य का व्यवहार फुफकारते हुए सर्प के समान भी हो सकता है और गुनगुनाती हुई चिड़िया के समान भी। यह भी हो सकता है कि दिन में हम चतुर लोमड़ी के समान सामाजिक क्रियाओं में लिप्त रहें और रात में नाइटिंगेल चिड़िया के समान अकेले गायें। हम किसी के लिये गुलाब की खुशबू फैला सकते हैं तो किसी के लिये चुभने वाले काँटे के समान प्रतिक्रिया भी प्रदर्शित कर सकते हैं; और यह सब हमारे अन्तःकरण द्वारा की गयी प्रतिक्रिया का परिणाम होता है। किसी भी स्तर पर हुई मनुष्य की प्रतिक्रिया उसकी आत्मा द्वारा की गयी क्रिया की पूर्णतया आज्ञाकारी होती है। मनुष्य अपने *विवेक*[12] का उत्पाद है; जैसी आत्मा होगी, वैसा ही मनुष्य का व्यक्तित्व होगा।

डाई ऑक्सीराइबोन्यूक्लिक एसिड से निर्मित जीन्स में चीनी और फ़ास्फ़ेट का एक-एक अणु एडीनीन, गुआनीन, साइटोसिन और थायमीन क्षारों में से किसी एक क्षार में प्रलम्बित रहता है। यही जीन्स प्रत्येक जीवित कोशिका में विद्यमान क्रोमोज़ोक्स की रचना करते हैं। चारों क्षारों की *जीन्स की वर्णमाला*[13] वही रहती है, केवल उसके

संयोग, *जीन्स के सन्देश*[14], *जीन्स के शब्द*[15] और *जीन्स का कोड*[16], वातावरण पर अपना प्रभाव डालते हुए प्राकृतिक चयन की प्रक्रिया में वातावरण से सामूहिक रूप से अन्तःक्रिया करते हैं। परन्तु मनुष्य के चैतन्य अनुभव केवल उसके मस्तिष्क के दैहिक यन्त्र-विन्यास के संचालन पर ही निर्भर नहीं करते हैं, न ही स्वयं का विकास केवल *जीन्स के वंशानुक्रम*[17] से मिले निर्देशों के अनुसार ही होता है। मनुष्य द्वारा परिस्थितियों और परिस्थितियों द्वारा मनुष्य के निर्माण की प्रक्रिया में निर्माण का नियम प्रथमतः स्वविवेक के सिद्धान्त द्वारा ही शासित होता है। अन्ततोगत्वा, आत्मा सर्वशक्तिमान है।

आलस्य अवगुण है परन्तु कार्य सदैव ही सद्गुण नहीं है, जब तक कि अच्छाई से प्रेरित न हो। इसलिये, किसी भी सद्गुण अथवा अवगुण की अपनी उपयोगिता अथवा दुरुपयोगिता होती है। अनुभूतियों के समान यदि उनका भी कुव्यवस्थित रूप से प्रयोग किया जाये तो उससे ऋणात्मक परिणाम उत्पन्न हो सकते हैं। दूसरों की सहायता करना सद्गुण है; एक स्वस्थ बालक द्वारा माँगी जा रही भीख को प्रोत्साहन देना उसके व्यक्तित्व के स्वतन्त्र विकास में बाधा उत्पन्न करना है। किसी का शारीरिक प्रताड़न अवगुण है परन्तु किसी नटखट बालक की असहनीय उद्दण्डता को रोकने के लिये कभी-कभी शारीरिक प्रताड़न आवश्यक हो सकता है। किसी भी कार्य की अवगुण अथवा सद्गुण प्रकृति के बारे में उस कार्य की क्रिया मात्र से ही पता नहीं लग सकता; इसके विपरीत उस कार्य से जुड़ी भावना अथवा अनुभूति से ही उस कार्य की अवगुण अथवा सद्गुण प्रकृति का आभास लगाया जा सकता है। किसी कार्य की अवगुणता या सद्गुणता निर्धारित करने में अन्तःकरण की व्याख्या के नियम लागू होते हैं। इसी प्रकार से *गुरुत्वाकर्षण के नियम*[18] के अनुरूप बड़ा अवगुण अपनी गुणात्मकता अंश, प्रकृति, पहचान आदि को छोड़े बिना छोटे अवगुण को अपनी ओर आकर्षित करता है। इसीलिये छोटी प्रकृति एवं विशेषता के कई अवगुण एक बड़े अवगुण से जुड़े रहते हैं। अवगुण की जड़ें जितनी गहरी होंगी, उखाड़े जाने का प्रयास करने पर वह अवगुण उतना ही अधिक आन्तरिक प्रतिरोध दिखाएगा। सद्गुण के बारे में भी यही नियम लागू होंगे। मनुष्य के सभी अवगुण और सद्गुण मानवीय प्रवृत्तियों और मनोवेशों के माध्यम से प्रदर्शित होते हैं।

जिस प्रकार से स्वप्न, बोध, स्मृति आदि मानस में कूटबद्ध ऊर्जायें हैं, इसी प्रकार से अवगुणों और सद्गुणों की प्रवृत्तियों और मनोवेश भी मानव-शरीर के किसी सूक्ष्मतर स्तर में सुषुप्तावस्था में निवास करने वाली संचित ऊर्जायें हैं। प्रत्येक प्रवृत्ति का अपना अमिट निराकार मण्डल होता है जिसमें उस प्रवृत्ति विशेष के सुषुप्त बीज विद्यमान रहते हैं। मनुष्य के भीतर के निराकार से सम्बन्ध रखते हुए ये अकम्पित मण्डल जब तक प्रेरित न किये जायें, निष्क्रिय रहने की योग्यता रखते हैं। उस संचित ऊर्जा के बन्धन अत्यन्त ढीले प्रकार से लेकर अत्यन्त सुदृढ़ प्रकार तक के हो सकते

हैं। ये बन्धन एक ओर ठोस या गैसीय प्रकृति के हो सकते हैं तो दूसरी ओर अटूट या क्षणभंगुर भी हो सकते हैं। कुछ प्रवृत्तियों के मण्डल अनम्य हो सकते हैं तो कुछ के नम्य भी हो सकते हैं। इन मण्डलों का ढीलापन, सुदृढ़ता, ठोसत्व, गैसीयता, अटूट क्षमता, क्षणभंगुरता, अनम्यता और नम्यता की मात्रा, योग्यता और प्रकृति भिन्न-भिन्न मनुष्यों में भिन्न-भिन्न होती है। इसी प्रकार से, एक ही व्यक्ति में एक ही मण्डल एक समय में नम्य और दूसरे समय में अनम्य हो सकता है। मनुष्य की आत्मा विभिन्न अवगुणों और सद्गुणों की प्रवृत्तियों और मनोवेशों का गोदाम है जिसके स्वतन्त्र परन्तु फिर भी एक-दूसरे पर निर्भर न पहचाने जा सकने योग्य मण्डलों में स्थितिज ऊर्जा के निराकार प्रारूप बन्द रहते हैं।

प्रत्येक अवगुण या सद्गुण की प्रवृत्ति या मनोवेश का उसी गुण से सम्बन्धित प्रतिपक्ष भी होता है जिसमें छिपी ऊर्जा से वे अन्तःक्रिया करते हैं। *निराकार द्विभागीय क्रोमोज़ोम*[19] के समान ये प्रतिपक्ष अपने-अपने सम्बन्धियों से जुड़े रहते हैं। एक सद्गुण के मण्डल में संचित ऊर्जा के बन्धन जैसे-जैसे सरलता से टूटने के योग्य होते जायेंगे, वैसे-वैसे ही उसके प्रतिपक्ष अवगुण के मण्डल में संचित ऊर्जा के बन्धन और अधिक सशक्त होते जायेंगे और उनमें कूटबद्ध ऊर्जा में कठिनता से कम्पन सम्भव हो सकेगा। बन्धनों की सुव्यवस्था जितनी ही सुदृढ़ होगी, उसे तोड़ने के लिये उतने ही सशक्त प्रेरणबल की आवश्यकता होगी और उस मण्डल से उसी अनुपात में उतनी ही कम मात्रा की ऊर्जा मुक्त होगी। इसके विपरीत अवगुण या सद्गुण के बन्धन जितने ही दुर्बल होंगे, उसका प्रवृत्ति मण्डल उतनी ही विस्फोटक प्रकृति का होगा। सुदृढ़ बन्धनों का मण्डल अकम्पित होगा, निर्बल बन्धनों का मण्डल अस्थिर होगा। आत्मा के युद्ध-स्थल में एक ओर मनोभावों और अभिलाषाओं की प्रवृत्तियों और दूसरी ओर तर्क में अनवरत रूप से लगातार युद्ध होता रहता है। आत्मा तर्क की स्थिति में विश्राम करती है और मनोभावों की स्थिति में गतिमान रहती है।

धनात्मकता के क्रियाशील रहने पर ऋणात्मकता निष्क्रियावस्था में अथवा स्थितिज रूप में रहती है; ठीक इसी प्रकार से इसके विपरीत भी होता है। सदैव हँसने वाला बहुत कम ही अश्रु विसर्जित करेगा; एक खुले हृदय से दान करने वाला बहुत कम ही दान का प्राप्तकर्ता होगा; सदैव सहृदयी सम्भवतः कभी ही क्रूर होगा। एक सदैव अप्रसन्न रहने वाला कभी-कभी ही प्रसन्नता की फुहार लाएगा; सदैव त्रुटियाँ निकालने वाला कभी-कभी ही प्रशंसा करेगा। एक सामान्यतः मृदुभाषी बहुत कम गुर्राएगा और सदैव गुर्राने वाला बहुत कम काटेगा। अपनी आत्मा में आपराधिक प्रवृत्ति का अत्यन्त ही क्षणभंगुर ऐसा मण्डल रखने वाला जिसमें अपराधता के बहुत ढीले बन्धन हैं, सामान्यतः अपराध के अतिरिक्त अन्य कुछ भी कारित न करने का झुकाव रखेगा।

अन्य मण्डलों की भाँति, आपराधिक प्रवृत्ति का मण्डल भी मनुष्य की आत्मा

का अप्रथक्करणीय भाग है। चूँकि आत्मा सम्पूर्ण ऋणात्मकता और धनात्मकता की वाहक है अथवा, दूसरे शब्दों में, चूँकि मनुष्य की आत्मा में अपनी स्थिर ऊर्जा को धनात्मक और ऋणात्मक रचनाओं के सभी गतिज प्रारूपों में परिवर्तित करने की योग्यता एवं क्षमता है, इसलिये प्रत्येक मनुष्य आपराधिक प्रवृत्ति का वाहक है—यद्यपि उस प्रवृत्ति की प्रकृति, प्रारूप, मात्रा एवं गुण विभिन्न मनुष्यों में भिन्न-भिन्न होते हैं। प्रत्येक आत्मा में बुरा एवं अच्छा विवेक होता है। आपराधिक प्रवृत्ति—मूल कारक, मूल अभौतिकीय कर्ता—अपने मण्डल में स्थितिज ऊर्जा के रूप में बन्द एवं संचित रहती है। इसी मण्डल में अपराधता के बीज सुषुप्तावस्था में पड़े रहते हें। कुछ पौधों और कुछ रोगों के वाइरस और बैक्टीरिया के बीज प्रतिकूल परिस्थितियों में सुषुप्तावस्था में पड़े रहते हैं तथा अनुकूल परिस्थिति आने पर अंकुरित हो जाते हैं। इसी प्रकार से, यद्यपि कुछ व्यक्तियों में अपराधता के बीज सुषुप्तावस्था में आजीवन पड़े रह सकते हैं, कुछ व्यक्तियों में वे बीज उनकी बाल्यावस्था में ही अंकुरित हो जाते हैं। अन्य प्रवृत्तियों और मनोदशाओं के समान ही, आपराधिक प्रवृत्ति और अपराधिता प्रत्येक आत्मा में जन्मजात एवं अन्तर्निहित होती है—चाहे वह प्रवृत्ति निष्क्रिय हो, चाहे क्रियाशील और चाहे आंशिक रूप से निष्क्रिय एवं आंशिक रूप से क्रियाशील हो।

सुषुप्तावस्था से क्रियाशीलता की अवस्था में आने पर अपराधता के बीज ऋणात्मक रूप से मनुष्य की सात शक्तियों—परा, ज्ञान, इच्छा, कार्य, स्नायु, विचारण व विश्लेषण तथा संवेदन—का ऋणात्मक रूप से सात ऊर्जा धाराओं—गतिज, शाब्दिक (वायु), ऊष्मीय, प्रकाशीय, विद्युतीय, चुम्बकीय तथा सम्बद्ध—को क्रियाशील करते हुए आह्वान करते हैं। आपराधिक आत्मा, जो कि आपराधिक प्रवृत्ति एवं अपराधता से प्रतिध्वनित बुरी आत्मा है, बुरी, ऋणात्मक एवं आपराधिक प्रारूपों की रचनाओं की योग्यता रखने वाली निर्बल बन्धनों की स्थितिज ऊर्जा की आत्मा है और इसलिये सर्वश्रेष्ठ व्यवस्था की सर्वोच्च आत्मा से अत्यन्त परे है। इसकी श्रेणी एवं व्यवस्था पूर्ण व्यवस्था की तुलना में अत्यन्त ही निम्न कोटि की एवं कुव्यवस्थित है। किसी भी अनुकूल प्रेरक का सूक्ष्मतम बल भी ऐसी आत्मा के अपराधता के बन्धनों को भंग करने के लिये पर्याप्त है। ऐसा प्रत्येक भंजन आत्मा के बलों के अनुपात को अस्त-व्यस्त कर देता है और अन्तरिक्षीय बलों के अनुपात में भी कुव्यवस्था लाता है।

आपराधिक प्रवृत्ति के मण्डल की व्यवस्था में एक भंजन होने पर मनुष्य एक बार अपराधी होता है; व्यवस्था में अस्थाई भंजन होने पर व्यक्ति अस्थाई अपराधी रहता है; यदा-कदा भंजन होने पर व्यक्ति यदा-कदा अपराधी बन जाता है; स्थाई भंजन होने पर मनुष्य स्थाई रूप से अपराधी हो जाता है। स्थाई आपराधिक आत्मा तब तक असाध्य है जब तक कि उसके मण्डल की व्यवस्था का पुनर्स्थापन नहीं हो जाता और उस मण्डल के बन्धन पुनः सुहृद नहीं हो जाते। अपराध की धारणा, प्रतिधारणा और संश्लेषण इस मण्डल में भी हो सकता है। इसी प्रकार से जैसे कोई

भी दो आत्मायें एक-दूसरे की प्रतिमूर्ति नहीं हो सकतीं, कई समानतायें होते हुए भी, दो आपराधिक आत्मायें भी एक ही जैसी नहीं हो सकतीं। यहाँ तक कि एक ही व्यक्ति की आपराधिक प्रवृत्ति भिन्न-भिन्न समय और परिस्थिति में भिन्न-भिन्न रूप से प्रतिक्रिया प्रदर्शित कर सकती है। यह सब अपराध के धागों की श्रेणी और उस अपराधता के कारणों पर जिस पर उन्हें बुना गया है, निर्भर करता है।

एक आपराधिक मण्डल जो सामान्यतः चोरी के लिये उत्प्रेरित करने वाली ऋणात्मक ऊर्जा मुक्त करता है, सामान्यतः हत्या के लिये आवश्यक ऊर्जा मुक्त नहीं करेगा। इसके अतिरिक्त, चोरी के प्रति झुकाव रखने वाली कम्पित आपराधिक प्रवृत्ति अपराध कारित करने के लिये भिन्न-भिन्न रीतियाँ, प्रणालियाँ एवं पद्धतियाँ चुन सकती है, यद्यपि यहाँ पर आपराधिक आत्मा द्वारा आपराधिक मानस से परामर्श लेना अपेक्षित है। आपराधिक ऊर्जा के एक प्रकार के स्थान पर दूसरा प्रकार मुक्त होना तभी सम्भव है जबकि किसी आन्तरिक अथवा बाह्य हस्तक्षेप के कारण आपराधिक मण्डल की आन्तरिक व्यवस्था में परिवर्तन आ जाये। व्यवस्था में यह परिवर्तन एक क्षण में भी आ सकता है, यथेष्ट समय भी ले सकता है अथवा यह भी सम्भव है कि कभी भी न आये। जिस प्रकार से बाह्य रूप से बाह्य आपराधिक बोध और अपराध तरंगें अकम्पायमान आत्मा पर प्रहार करती हैं, उसी प्रकार से आन्तरिक रूप से आन्तरिक बोध, कूटबद्ध स्मृतियाँ, स्वप्न और शरीर की विद्युत धारायें आत्मा के आपराधिक मण्डल में स्थित उस स्थिर विद्युत चुम्बकीय संयोग को कम्पायमान कर सकती हैं, जिसका मनुष्य की आत्मा में विद्यमान भेद्य अस्तित्व अपराध कारित होने का प्रथम अन्तरिक्षीय कारण है।

अपराध घटित होने की प्रक्रिया

स्व-कारित *प्रारम्भिक कम्पायमान इच्छा*[1]—सभी उत्तरकालीन कम्पनों, अभिव्यक्तियों, निर्माणों और गतिज रचनाओं का मूल कारण—जिसने गिरते हुए तापक्रम पर अकम्पित अनिर्मित शून्यता को कम्पित कर दिया, का उत्पन्न होना कम्पायमान परिवर्तन की अन्तरिक्षीय यात्रा का आरम्भ था। *गुणित होने की अन्तरिक्षीय इच्छा*[2] ने प्रारम्भिक पूर्णता अथवा ऊर्जा से सर्वप्रथम उच्च कोटि के अगिनत अभौतिक कम्पनों का निर्माण किया। विभिन्न आवृत्तियों के इन *द्विगुणी*[3] कम्पनों, जिनमें विभिन्न उच्च स्तरीय निराकार घटनाओं में परिवर्तित हो सकने की योग्यता थी, ने सम्पूर्ण अन्तरिक्ष में द्वितीय, तृतीय व अन्य कम्पनों का विसर्जन किया। प्राथमिक निराकार घटनायें वंशानुक्रम में धीरे-धीरे अन्तरिक्ष में घटित होती गईं—पहले अत्यन्त ही प्रारम्भिक स्तर के रूप में और तत्पश्चात विशिष्ट रूप से सुव्यवस्थित प्रारूप में। बालू और चट्टानों के कम्पनों में *निराकार घटनाओं को प्रदर्शित करने की छुपी हुई योग्यता*[4] शनैः-शनैः वनों और प्राचीन जीवों के रूप में साकार हुई; जो अभी भी छुपी थीं, वे सम्पूर्ण योग्यतायें इस पृथ्वी पर अवतरित सबसे विकसित जीव—मनुष्य—में *गतिज व्यवस्था*[5] के रूप में सकेन्द्रित हो गयीं। सभी आरम्भिक कम्पन मनुष्य के हृदय में चुपचाप आकर मनुष्य की आत्मा में स्थित हो गये।

क्या वसन्त ऋतु के माध्यम से प्रकृति ने कभी अपनी प्रसन्नता—एक निराकार अनुभूति—का प्रदर्शन नहीं किया है ? क्या ग्रीष्म ऋतु की पराकाष्ठा में सूर्य ने हम पर अपना क्रोध प्रकट नहीं किया है ? क्या चन्द्रमा स्वान्तः सुखाय हेतु बादलों के साथ बालकों की भाँति लुकाछिपी नहीं खेलता है ? हमारे द्वारा प्रकृति का मूल नियम भंग करने पर उसके द्वारा हमें दण्ड देते समय क्या उसकी पित्रस्वरूप भावना का हमें आभास नहीं होता है ? क्या आपके उदासीन एवं हतोत्साहित क्षणों में प्रकृति द्वारा वास्तविक सहानुभूतिपूर्ण भावनाओं के माध्यम से आपको उन क्षणों से उन्मुक्त कराने का प्रयास नहीं किया जाता है ? मनुष्य की सामान्य चेतना से परे, प्रकृति अपने में सभी निराकार भावनाओं और अनुभूतियों को समेटे हुए यदा-कदा स्वतः ही अपने स्तर एवं प्रकार से उनका प्रदर्शन करती रहती है। निराकार अनुभूतियों, भावनाओं और इच्छाओं के कम्पन प्रकृति में प्रलम्बित रहते हैं तथा उनका प्रदर्शन कभी-कभी

अन्तरिक्षीय आत्मा के द्वारा होता है।

प्रेरणा देने पर झील की सतह के स्थिर जल में विद्यमान स्थितिज ऊर्जा झील के किनारों की ओर कम्पायमान तरंगों पर गतिज ऊर्जा के रूप में यात्रा करने लगती है। अन्तरिक्षीय केन्द्र अपनी स्थिर ऊर्जा को सम्पूर्ण अन्तरिक्ष में प्रसारित करने की इच्छा से अभी भी कम्पायमान होता रहता है। इसी प्रकार से, मनुष्य की आत्मा—मनुष्य में विद्यमान अकम्पायमान एवं अनिर्मित ऊर्जा जो कि सर्वोच्च आत्मा की सभी योग्यतायें रखते हुए उसका एक अंश है—में भी विभिन्न प्रकृति के कम्पन होते रहते हैं। अन्तरिक्ष के निर्माण की भाँति आत्मा से पदार्थ और पदार्थ से आत्मा का निर्माण कम्पनों के माध्यम से होता रहता है। जिस *विस्फोट*[6] ने सर्वोच्च आत्मा को कम्पायमान कर दिया, उसी प्रकार के विस्फोट—यद्यपि अत्यन्त ही सूक्ष्म स्तर के—घर्षण द्वारा मनुष्य की आत्मा को भी कम्पायमान करते हैं। मनुष्य की आत्मा में स्थित सद्गुण एवं अवगुण के विभिन्न मण्डलों में सूक्ष्मस्तरीय विस्फोट अनवरत रूप से होते रहते हैं। इनकी प्रकृति, मात्रा एवं गुण आन्तरिक अथवा बाह्य प्रेरक—जो कि बोध का परिणामी होता है—की प्रकृति, मात्रा एवं गुण पर निर्भर करती है। मनुष्य की आत्मा में अवश्रव्य स्तर पर हुआ विस्फोट--यह विस्फोट सुनाई नहीं देता, वरन् इसकी ध्वनि मनुष्य अपने भीतर ही सुनता है—आन्तरिक अचल ऊर्जा को विभिन्न प्रकार से कम्पायमान कर देता है जिससे विभिन्न श्रेणियों की चल ऊर्जा विभिन्न आवृत्तियों पर मुक्त होती है।

एक पर्वत स्वतः ही विभाजित नहीं हो सकता परन्तु एल्गी हो सकती है; एल्गी सीधे खड़ी नहीं रह सकती परन्तु एक छोटा पौधा खड़ा रह सकता है; छोटा पौधा लम्बा नहीं हो सकता परन्तु वृक्ष लम्बा हो सकता है; वृक्ष चल नहीं सकता परन्तु अमीबा चल सकता है; अमीबा दौड़ नहीं सकता परन्तु हरिण दौड़ सकता है; हरिण उच्चस्तरीय समझ का प्रदर्शन नहीं कर सकता परन्तु चिम्पांज़ी ऐसा कर सकता है; चिम्पांज़ी उच्च स्तरीय अनुभूतियों और भावनाओं को प्रकट नहीं कर सकता परन्तु मनुष्य ऐसा कर सकता है। यद्यपि चलने, दौड़ने अथवा अनुभूति या भावना व्यक्त करने सम्बन्धी किये गये कार्य को सम्पादित करने के लिये जीवों में अधिक क्लिष्ट एवं सम्मिश्रित संरचना की आवश्यकता होती है तथापि इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि जिनमें किसी कार्य को कार्यान्वित करने की योग्यता नहीं है, उनमें इस कार्य को कार्यान्वित करने का प्रयत्न करने की भी योग्यता नहीं है। न ही इससे यह ही स्थापित होता है कि जो किसी कार्य को करने का प्रयत्न नहीं कर सकते, वे तैयारी भी नहीं कर सकते और जो तैयारी नहीं कर सकते, वे उस कार्य को करने का आशय भी नहीं रख सकते। हो सकता है कि पर्वत विभाजित होने का आशय रखने की योग्यता रखते हों, परन्तु विभाजन की तैयारी की योग्यता न रखते हों। यदि एल्गी ने सीधे खड़े होने के बारे में न सोचा होता तो पौधा सीधे खड़े [illegible] ी योग्यता न[illegible]

रख सकता था; यदि पौधे ने लम्बे होने की अनुभूति न की होती तो वृक्ष लम्बा नहीं हो पाता; यदि वृक्ष ने चलने की इच्छा न की होती तो अमीबा चल नहीं पाता; यदि अमीबा ने दौड़ने की तैयारी न की होती तो हरिण दौड़ सकने योग्य नहीं हो पाता; यदि हरिण ने उच्च स्तरीय समझ प्रदर्शित करने का प्रयत्न न किया होता तो चिम्पांज़ी ऐसा नहीं कर सकता था; यदि चिम्पांज़ी ने लकड़ी के औज़ारों का निर्माण न किया होता और अपनी सुरक्षा के लिये पत्थरों का प्रयोग न किया होता तो मनुष्य आज आकाश पर चलने के योग्य न होता। वंशानुक्रम व्यवस्था में, अधिक कठिन संरचना वाले जीव किसी कार्य को सफ़लतापूर्वक निष्पादित कर सकते हैं, उससे कुछ कम कठिन संरचना वाले जीव कार्य करने का प्रयत्न मात्र ही कर सकते हैं परन्तु उन्हें सफ़लता नहीं मिल सकती है; सरल संरचना वाले जीव कार्य करने की केवल तैयारी ही कर सकते हैं, जबकि अत्यन्त प्राथमिक जीव उस कार्य को करने की अनुभूति एवं इच्छा मात्र ही रख सकते हैं। प्राथमिक वस्तुयें, तत्त्व, जीव, घटनायें, तथ्य आदि केवल अनुभूति कर सकते हैं परन्तु कोई इच्छा नहीं कर सकते; विकसित जीव आदि इच्छा कर सकते हैं परन्तु आशय नहीं रख सकते; अधिक विकसित जीव आदि आशय कर सकते हैं परन्तु तैयारी नहीं कर सकते; जैविक उत्तराधिकारिता में अत्यन्त उच्च कोटि के विकसित जीव आदि प्रयत्न करके अपने आशय को पूर्णरूपेण कार्य में परिवर्तित भी कर सकते हैं। *अन्तरिक्षीय वंशानुक्रम*[7] में प्रथम रचना सूक्ष्मतम निराकारों, भावनाओं आदि की हुई और ये सूक्ष्मतम निराकार भी सर्वप्रथम छुपे हुए प्रारूपों में और तत्पश्चात् स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होते हुए प्रकट हुए। इसी प्रकार से, मनुष्य की आत्मा में विस्फोट होने पर प्राथमिक कम्पन केवल प्रसन्नता, दुःख, क्रोध आदि की *सूक्ष्मतर निराकार*[8] अनुभूतियों और भावनाओं के ही होते हैं; कम्पायमान तरंगों का द्वितीय स्तर और कुछ भौतिकता का मिश्रण दर्द, ऊष्मा, शीत आदि के निराकार उत्पन्न करता है। अधिक जटिल कम्पायमान तरंगें तथा अधिक भौतिकता का सम्मिश्रण तैयारी व प्रयत्न कर सकने और निराकार भावना आदि को चेतना के स्तर पर बोध कर सकने योग्य कार्य में परिणित कर सकने की भी योग्यता रखता है। क्या इच्छा, जो कि अभौतिकीय सूक्ष्मतर निराकार है, आत्मा में विस्फोट होने पर उत्पन्न हुए मूल कम्पनों से सहसम्बन्धित नहीं है ? क्या इच्छा आत्मा में होने वाला प्रथम कम्पन नहीं है ? इच्छा और प्रथम कम्पन एक-दूसरे के पर्यायवाची हैं।

मानव-शरीर (ऊर्जा का भौतिकीय अस्तित्व), मानस (ऊर्जा का विद्युत चुम्बकीय अस्तित्व) और आत्मा (ऊर्जा का पराविद्युत चुम्बकीय अस्तित्व) में भौतिकता क्रमशः कम होती जाती है। मानस को वश में करने अथवा मुक्त करने की अपेक्षा भौतिकीय शरीर को वश में करना अथवा मुक्त करना सरल है; आत्मा को प्रभावित करना अथवा निरुद्ध करना अपेक्षाकृत और भी कठिन है। तर्क मानस को एकाग्र करता है; प्रेम, लगन इच्छा-शक्ति और यहाँ तक कि श्वास भी तर्क को नियन्त्रित करते हैं।

मानस *व्यस्क*[9] की भाँति तथा आत्मा *पिता और बालक*[10] दोनों की ही भाँति व्यवहार करते हैं; आत्मा मानस से भी श्रेष्ठ है। एक प्रारूप से दूसरे प्रारूप की ऊर्जा के स्वतः एवं अनवरत रूप से परिवर्तन में व्यस्त शरीर, मानस और आत्मा का त्रिक प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से पास-पड़ोस, परिस्थितियों, वातावरण और प्रकृति के सम्पर्क में रहता है। आत्मा, मानस और शरीर यद्यपि अलग-अलग अपनी पहचान रखते हैं, तथापि स्वतन्त्र न होकर एक-दूसरे पर आश्रित रहते हैं और व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनों ही रूप से परिस्थितियों और वातावरण से प्रभावित रहते हैं और उन्हें भी प्रभावित करते हैं। शरीर पर डाला गया कोई भी पर्याप्त बाह्य प्रभाव उसी प्रकार का प्रभाव–यद्यपि उसकी श्रेणी एवं तीव्रता कम भी हो सकती है–मानस पर और अन्ततोगत्वा आत्मा पर भी डालेगा। मानस द्वारा किया गया कोई भी बोध मनुष्य के भीतर दो धारायें भेजता है–एक धारा निर्मित भौतिकीय एवं अभौतिकीय शरीर और दूसरी अनिर्मित आत्मा पर प्रभाव डालती है। आत्मा को दिया गया कोई भी प्रेरण इसी प्रकार से मानस और शरीर को भी प्रभावित करता है। कहीं पर भी कारित किया गया कोई एक कारण शरीर, मानस, आत्मा, परिस्थितियों, पास-पड़ोस की व्यवस्थाओं, वातावरण और प्रकृति सभी को एक ही प्रहार से प्रभावित कर सकता है। उपरोक्त वर्णित सम्पूर्ण अस्तित्वों में चूँकि आत्मा ही मनुष्य के पूर्णत्व की शासक है–जिस प्रकार से सर्वोच्च आत्मा अन्तरिक्ष के पूर्णत्व की शासक है–जैसी आत्मा होगी, वैसा ही मनुष्य होगा।

किसी भी प्रेरण–चाहे वह धनात्मक हो अथवा ऋणात्मक–की प्रतिक्रिया की तीव्रता उस प्रेरण की क्रिया की तीव्रता के समानुपाती होती है। लटकाया गया अंकुरित बीज भूअनुवर्तन के स्थान पर जलानुवर्तन चुनने के कारण अपना अंकुर ऊपर की ओर मोड़ लेता है; एक प्रतिक्रिया प्राकृतिक घटना से जुड़ी आवश्यकता की तुलना में जीवित रहने की आवश्यकता अधिक होने पर एक प्रकार के अनुवर्तन के प्रति धनात्मक तथा दूसरे प्रकार के अनुवर्तन के प्रति ऋणात्मक व्यवहार अपना सकती है। जीवित रहने की आवश्यकता प्राकृतिक आवश्यकता से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। व्यक्तिगत एवं सामाजिक व्यवस्थायें इस प्रकार की होनी चाहिए जिससे प्रत्येक मनुष्य जीवित रहने के अधिकार को प्राप्त कर उसका प्राकृतिक उपभोग कर सके। इसके अतिरिक्त, एक मनुष्य के सन्दर्भ में, दिया गया प्रेरण आन्तरिक और बाह्य दोनों ही हो सकता है। आन्तरिक प्रेरणों व जन्मजात कारकों से घटित प्रतिक्रियायें *स्वतन्त्र*[11] या स्वतः घटित होने वाली प्रतिक्रियायें तथा बाह्य प्रेरणों से घटित प्रतिक्रियायें *प्रेरित*[12] या पैराटोनिक प्रतिक्रियायें होती हैं। संकुचनशील रिक्तिका–पौधों की कोशिकाओं में पाये जाने वाला अजीवित अन्तस्थ पिण्ड–जीव द्रव्य और कोशिका में संकुचन और प्रसार के लिये उत्तरदायी होती है और साथ ही उन जन्तुओं के जिनकी कोशिकाओं में यह रिक्तिका होती है, रक्त की गतिशीलता,

श्वास प्रक्रिया और शारीरिक गतिशीलता के लिये उत्तरदायी होती है। मनुष्य के शरीर के भीतर ऊर्जा की गति प्रेरण—मनुष्य के आन्तरिक अथवा बाह्य वातावरण में हुआ ऐसा परिवर्तन जिससे वह प्रभावित हो जाये—द्वारा जीव द्रव्य में हुई उत्तेजना के कारण होती है। जीवद्रव्य अपने गुण और विशेषताओं के अनुसार उस आन्तरिक अथवा बाह्य प्रेरण के प्रति प्रतिक्रिया दिखाता है। प्रस्तुतीकरण-समय प्रतिक्रिया प्राप्त करने के लिये लगातार दिये जाने वाले प्रेरण का न्यूनतम समय है; प्रतिक्रिया-समय प्रेरण दिए जाने के पश्चात् प्रतिक्रिया होने का न्यूनतम समय है; शिथिलीकरण-समय प्रेरित प्रतिक्रिया के समाप्त होने का न्यूनतम समय है। संकलन के नियम के अनुसार, जिस प्रकार से कोई भी प्रेरण स्वतन्त्र नहीं है, उसी प्रकार से एक प्रतिक्रिया भी स्वतन्त्र नहीं है। वरन् वह उस प्रकार के प्रेरण के प्रति हुई पिछली सभी प्रतिक्रियाओं का सम्मिश्रण एवं योग है। क्या *आन्तरिक धनात्मक निरोधी प्रति-प्रतिक्रिया*[13] पर *आन्तरिक ऋणात्मक उद्दीपक प्रतिक्रिया*[14] की प्रभाविता अपराध के कारण में योगदायी नहीं है ?

एक स्वचालित वाहन में शरीर वाहन के साथ लय में कम्पन करता है; पर्याप्त प्रेरण देने पर मनुष्य की आत्मा में भी प्रतिक्रिया स्वरूप कम्पन होते हैं। सभी ऊर्जा संचालन अथवा प्रसारण वृत्तीय होते हैं। जब वृत पूर्ण हो जाता है तो ऊर्जा के गतिमान होने से वृत में शक्ति उत्पन्न होती है। मनुष्य की आत्मा विस्फोट होने पर उत्पन्न हुए कम्पनों की प्रकृति एवं आवृत्ति के अनुसार ऊर्जा मुक्त करती है। विस्फोट का जैसा गुण और प्रकृति होगी, वैसी ही प्रकृति, गुण और आवृत्ति उससे मुक्त हुई ऊर्जा की होगी। पर्याप्त-प्रेरण—जो कि विस्फोट का तुरन्त कारण है—स्वतः, आन्तरिक अथवा बाह्य हो सकता है। स्वतः प्रेरण होने पर विस्फोट का कारण स्वयं आत्मा के ही भीतर होता है, जैसा कि अन्तरिक्षीय विस्फोट के समय हुआ था। आन्तरिक प्रेरण होने पर हुआ विस्फोट न्यूरेक्सिस के सातों स्नायु वृतों के सामूहिक प्रभाव का परिणाम होता है। बाह्य-प्रेरण होने पर विस्फोट का कारण पास-पड़ोस, वातावरण तथा मीडिया में होता है। आत्मा में स्थित सद्‌गुण अथवा अवगुण की किसी प्रवृत्ति के मण्डल के बन्धनों के बीच बल *लघु वर्ग अथवा दीर्घ वर्ग*[15] का हो सकता है। जब बन्धन अत्यन्त ही तनु होते हैं तो चैतन्य स्तर पर किसी भी प्रेरण की आवश्यकता नहीं होती है और आत्मा का सन्दर्भित मण्डल स्वयमेव कम्पायमान हो सकता है; जब बन्धन कम नाशवान होते हैं तो आपराधिक प्रवृत्ति के मण्डल में विस्फोट के लिये पर्याप्त आन्तरिक अथवा बाह्य प्रेरण की आवश्यकता होती है।

कम्पनों में विद्यमान मुक्त हुई ऊर्जा ऊर्जा मुक्त करने वाले मण्डल की प्रवृत्ति से भरी रहती है; किसी विशेष मण्डल से उत्पन्न हुए कम्पनों की आवृत्ति एवं प्रकृति यह निर्धारित करती है कि वे कम्पन सद्‌गुण अथवा अवगुण की अनुभूति, भावना अथवा इच्छा में से किस प्रकार के हैं। किसी भी मण्डल के *किसी भी स्तर पर*[16] कम्पनों के रूप में उत्पन्न हुई ऊर्जा की प्रत्येक गति सूक्ष्म निराकार से बोध किये जाने

योग्य कार्य तक की कारण-प्रक्रिया का प्रथम कारण होती है। उदारता के मण्डल से निकलने वाले कम्पन उदार अनुभूति, उदार भावना या उदार इच्छा उत्पन्न करेंगे; घृणा के मण्डल में हुए स्पन्दन घृणा के शब्दों में परिवर्तित हो सकते हैं; सहानुभूति के मण्डल से उत्सर्जित तरंगें सहानुभूति की भावनायें जागृत कर सकती हैं। आपराधिक प्रवृत्ति के भेद्य मण्डल से इच्छा के कम्पन उत्पन्न होने पर आपराधिक इच्छा—अपराध कारित करने की इच्छा—का जन्म होता है।

आत्मा जिस प्रकार से मानस में विचार को जन्म देती है, उसी प्रकार से वह हृदय में इच्छा का निर्माण करती है। मनुष्य द्वारा प्रदर्शित प्रत्येक घटना अथवा तथ्य तीन मनोवैज्ञानिक बलों—सक्रिय (बालक), निष्क्रिय (पैत्रिक) तथा समन्वयता (व्यस्क) की सामूहिक क्रिया से शासित होती है। आपराधिक घटना आपराधिक इच्छा की अभिव्यक्ति है और आपराधिक इच्छा आपराधिक प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति है। किसी भी मनुष्य का प्रत्येक आपराधिक कार्य उस आपराधिक प्रवृत्ति के मण्डल की क्रियाशीलता से नियन्त्रित होता है, जहाँ उस व्यक्ति की व्यस्क और बालक मनोवृत्ति—स्थिरता और निरन्तरता—के बीच स्थाई रूप से संघर्ष होता रहता है। सामाजिक अन्तःक्रियाओं से मेरुदण्ड को लगने वाले बुरे आघात ऐसे पूर्वाग्रहों से भरे बोध को विकसित करते हैं जिसके कारण मनुष्य दूसरों की प्राप्ति और स्वयं की अप्राप्ति पर अधिक ध्यान देने लगता है और ऐसा बोध मनुष्य में समाज में अपनी योग्यता से भी परे मान्यता प्राप्त कर लेने की इच्छा जागृत करने के लिये पर्याप्त प्रेरण हो सकता है। दूसरों की प्राप्ति और स्वयं की अप्राप्ति के बारे में सुचेतना के माध्यम से की गयी धनात्मक अवधारणा सन्तुष्टि के मण्डल को कम्पायमान कर सकती है और ऋणात्मक अवधारणा आपराधिक इच्छा को जन्म दे सकती है। इस समय क्रमशः आन्तरिक धनात्मक और ऋणात्मक तरंगें भी प्रेरण का कार्य करती हें और आन्तरिक ताप में परिवर्तन भी विस्फोट कारित करने में मुख्य भूमिका निभाता है। प्रत्येक आपराधिक इच्छा की अपनी विशेष क्षमता होती है जो विभिन्न कारकों पर निर्भर करती है।

शरीर में विद्युत और चुम्बकत्व विद्यमान रहने के कारण प्रत्येक मनुष्य अपना एक विशेष संयुक्त विद्युत चुम्बकीय संयोग वहन करता है। यह संयोग अन्तरिक्षीय विद्युत चुम्बकीय संयोग की सामान्य व्यवस्था की भाँति ही होता है—यद्यपि मनुष्य का संयोग अन्तरिक्ष के संयोग की अपेक्षा अत्यन्त ही निम्न श्रेणी का होता है। किसी भी इच्छा के उत्पन्न होने से मनुष्य की विद्युत-चुम्बकीय व्यवस्था में स्वयमेव ही परिणामी परिवर्तन हो जाते हैं। परिवर्तन होने पर किसी भी व्यक्ति की विद्युत चुम्बकीय व्यवस्था में अन्तरिक्षीय विद्युत चुम्बकीय व्यवस्था की ओर उत्थान होने से सद्‌गुणों की तरंगें उत्सर्जित होती हैं; परिवर्तन से व्यक्ति की विद्युत चुम्बकीय व्यवस्था के पतन—जो कि कुव्यवस्था होगी—होने से उसकी विद्युत—चुम्बकीय व्यवस्था अन्तरिक्ष

की विद्युत चुम्बकीय व्यवस्था के प्रकार से दूर हो जायेगी और इससे अवगुणों की तरंगें उत्सर्जित होंगी। आपराधिक तरंगों का उत्पादन होने पर मनुष्य की विद्युत चुम्बकीय व्यवस्था में अपराधता की दिशा में पतन होता है और इससे शरीर, मानस और आत्मा की सम्पूर्ण क्रमबद्धता प्रभावित होती है।

शरीर, मानस और आत्मा का त्रिक व्यवस्थित क्रम में अर्थात् अपना विद्युत चुम्बकीय संयोग सामान्यतः अन्तरिक्षीय विद्युत चुम्बकीय संयोग के निकट रखते हुए एक मनुष्य को सामान्यतः अच्छे विवेक का मनुष्य बनाता है तथा इसी त्रिक में हुई कोई कुव्यवस्था उसके बुरे विवेक की क्षमताओं को बढ़ाती है। अच्छे विवेक को रखने वाला अच्छी इच्छाओं को जन्म देगा, बुरा विवेक रखने वाला बुरी इच्छाओं का जन्मदाता होगा। इसी प्रकार से, अच्छा मानस अच्छी वस्तुओं एवं कार्यों के लिये तैयारी करेगा। जब कि बुरा मानस बुरी वस्तुओं एवं कार्यों के लिये तैयारी करेगा। समान रूप से, अच्छा शरीर अच्छे कार्यों को करने के लिये प्रयत्न करेगा और बुरा शरीर बुरे कार्यों को करने के लिये प्रयत्नशील रहेगा। अपराधता के सक्रिय बीजों से भरी मनुष्य की आत्मा आपराधिक रूप से सदैव आवेशित रहती है और एक ऐसे अतिसंवेदनशील आपराधिक एन्टीना का निर्माण करती है जिसका झुकाव अपराध तरंगों को निरन्तर पकड़ने के प्रति हो। साथ ही, ऐसी आत्मा एक ऐसे आपराधिक शरीर का निर्माण करती है जो अपराध कारित करने हेतु सफलतापूर्वक प्रयास कर सके। अपराध पूर्ण रूप से कारित होने के लिये सक्रिय आपराध्किा आत्मा, संवेदनशील आपराधिक एन्टीना और सक्षम आपराधिक शरीर—क्रमशः, आपराधिक प्रवृत्ति का भेद्य मण्डल, आपराधिक बोध और अपराध कारित करने की आपराधिक योग्यता—अपरिहार्य अवयव हैं, जबकि आपराधिक बीजों के अंकुरण की प्रक्रिया के लिये अपराध कारित होने के तीनों अन्तरिक्षीय कारणों—अपराध तरंगें, आपराधिक एन्टीना और आपराधिक प्रवृत्ति के अस्थिर मण्डल—का सम्मिलित होना परम आवश्यक है।

एक विशेष प्रकृति की अपराध तरंगों—किसी विशेष अपराध की ऋणात्मक ऊर्जा से आवेशित प्रेरण—का बोध उस विशेष अपराध का बोध कर सकने के प्रति झुकाव रखने वाले आपराधिक एन्टीना द्वारा चेतना अथवा अचेतना के किसी भी स्तर पर किया जा सकता है। यह बोध असंगठित अथवा निदेशात्मक, तुरन्त प्रतिक्रिया करने वाला अथवा विलम्ब से प्रतिक्रिया करने वाला हो सकता है, यह प्रतिक्रिया न करने वाला भी हो सकता है। अपराध तरंगों का बोध करने पर आपराधिक मानस उसको विचारता एवं विश्लेषित करता है। यदि बोध निदेशात्मक है तो उसकी प्रतिक्रिया में भाग लेने वाले सभी चैतन्य कारक अथवा यन्त्र—मानस, आत्मा, शरीर एवं वातावरण—अपने-अपने सहयोग की प्रकृति, गुण एवं तीव्रता के अनुसार स्वयं में आन्तरिक परिवर्तन के द्वारा तैयारी आरम्भ कर देते हैं। अपने में भौतिकता होने के

कारण आत्मा की तुलना में मानस अधिक भेद्य होता है और अपने द्वारा किये गये बोध के प्रभाव का सन्देश वह आत्मा को भेजता है। यदि आपराधिक प्रवृत्ति के मण्डल को आपराधिक एन्टीना द्वारा भेजी गयी सन्देश की धारा उस मण्डल के बन्धनों को तोड़ते हुए उसमें *घर्षण*[17] करने के लिये पर्याप्त है तो उस मण्डल में सूक्ष्म विस्फोट होता है और आपराधिक प्रवृत्ति के बन्धन टूट जाने से अपराधता के बीज जागृतावस्था में आ जाते हैं और स्थितिज ऊर्जा ऋणात्मक गतिज ऊर्जा में परिवर्तित होते हुए उस विशेष अपराध के कम्पनों के रूप में मुक्त होती है। प्रत्येक घर्षण से ध्वनि उत्पन्न होती है—वह ध्वनि श्रव्य, अवश्रव्य अथवा पराश्रव्य हो सकती है। आपराधिक आत्मा में हुआ घर्षण आपराधिक प्रतिक्रिया के रूप में आन्तरिक अवश्रव्य ध्वनि उत्पन्न करता है और आत्मा में उस विशेष अपराध को कारित करने की आपराधिक इच्छा जन्म लेती है। अपराध तरंग प्रेरित करती है, मानस बोध करता है और हृदय गर्भ धारण करता है।

आपराधिक एन्टीना द्वारा आपराधिक आत्मा को भेजा गया प्रत्येक आपराधिक सन्देश उस पर अमिट प्रभाव डालता है तथा यह प्रभाव वंश दर वंश संचारित होता है अथवा हो सकता है, यद्यपि आगामी वंशों में आपराधिक बीजों का अंकुरण सन्तानों द्वारा अपराध तरंगों के प्राकृतिक चयन पर निर्भर करेगा। अपराध तरंगों के आक्रमण पर हुई प्रतिक्रिया के फलस्वरूप कोशिकाओं की चयापचयता और उनकी क्रियाओं के क्रम में परिवर्तन हो जाता है। प्रेरण गुरुत्वीय, ऊष्मीय, रासायनिक, प्रकाशीय, प्रघात से, स्पर्श से अथवा ध्वनि का हो सकता है; वह बाह्यकारी भी हो सकता है और मनुष्य को *अनुबन्धित*[18] भी कर सकता है। अंकुरण के लिये उत्तरायी अन्य कारक भौतिकीय, जैविक, मानसिक, मनोवैज्ञानिक, आनुवांशिक, सामाजिक, आर्थिक, पारिस्थितिक आदि हो सकते हैं, परन्तु ये सभी कारक गौण होने के कारण मात्र *उत्प्रेरक माध्यम*[19] हैं। यद्यपि माध्यम भिन्न-भिन्न हैं, तथापि घर्षण, आपराधिक प्रवृत्ति के मण्डल में विस्फोट, अपराधता के बीजों का अंकुरण, मनुष्य की आत्मा में मूल कम्पन, आपराधिक आत्मा से ऊर्जा मुक्त होने एवं आपराधिक इच्छा के जन्म होने का मूल कारण वही है, चाहे कोई व्यक्ति स्वस्थ हो अथवा विक्षिप्त। विक्षिप्तों में अपराध तरंगों का बोध सदैव केवल अचेतन मानस के ही एक या कई स्तरों द्वारा होता है। अतः उनके प्रत्यक्ष ज्ञान अथवा चैतन्य स्तर पर हुए बिना ही उनमें आपराधिक इच्छा का जन्म होता है। यदि किसी अपराध को कारित करने के उपरान्त कर्ता को उसकी याद न रहे या वह उसे याद न कर पाये तो तभी यह कहा जा सकता है कि उसने वह अपराध चेतनावस्था में कारित नहीं किया है। मनुष्य बोध करने के अपने *स्तर*[20] के आधार पर दोषी अथवा निर्दोष होता है, यद्यपि उसने एक ही प्रकार के प्रेरण का बोध किया हो।

कार्य-इच्छा का अन्तिम रूप है। आपराधिक इच्छा गुणात्मक रूप से मात्र एक

बुलबुले के समान हो सकती है और तुरन्त ही समाप्त हो सकती है। वह प्रतिध्वनि के समान कुछ समय तक, परन्तु बिना किसी फलदायक परिणाम के, प्रतिध्वनित होती भी रह सकती है। एक शक्तिशाली और स्थाई आपराधिक इच्छा, जिसमें चट्टान के समान कठोरता है, का जन्म होने पर—और ऐसी इच्छा एक क्षण में भी उत्पन्न हो सकती है—इच्छा ऊर्जा के आशय ऊर्जा में परिवर्तित होने के कारण इच्छा तरंगें आशय तरंगों में परिवर्तित होती हैं और अपराध कारित करने के दृढ़ निश्चय का जन्म होता है। क्योंकि निवेश और निर्गत सहसम्बन्धित होते हैं, अतः मूल आत्मा से आपराधिक इच्छा के रूप में प्रतिनिर्देशित अपराध तरंगें उत्सर्जित होती हैं। प्रतिक्रिया स्वरूप, आपराधिक आत्मा से आपराधिक मानस को पुनः सन्देश जाता है और आपराधिक मानस उस सन्देश के आधार पर उस योजना और पद्धति की तैयार करता है जिसके अनुसार अपराध कारित किया जाना है। आपराधिक मानस आपराधिक शरीर के सुसंगत अंगों को भी क्रमशः सन्देश की धारायें इस उद्देश्य से भेजता है कि वे अंग अपराध कारित करने के प्रयत्न के लिये यथोचित तैयारी कर लें। जब सम्बन्धित अंग मानस को अपनी तैयारी के बारे में सन्देश भेजते हैं, और यदि आपराधिक इच्छा के कम्पन अभी भी मानस को उत्तेजित कर रहे हैं, तो आपराधिक मानस आपराधिक शरीर को अपराध निष्पादित करने का आदेश देता है और अपराध कारित हो जाता है।

बोध करने पर

(क) जब बोध की गयी ऊर्जा अनुभूति ऊर्जा में परिणित होती है तो अनुभूति का जन्म होता है।

(ख) जब अनुभूति ऊर्जा इच्छा ऊर्जा में परिवर्तित होती है तो इच्छा का जन्म होता है।

(ग) जब इच्छा ऊर्जा आशय ऊर्जा में, परिणित होती है तो आशय का जन्म होता है।

(घ) जब आशय ऊर्जा तैयारी ऊर्जा में परिवर्तित होती है तो तैयारी होती है।

(ङ) जब तैयारी ऊर्जा कार्य ऊर्जा में परिवर्तित होती है तो प्रयत्न किया जाता है और कार्य की अभिव्यक्ति होती है। (ऊर्जा का अनुभूति से कार्य में परिवर्तन)

यद्यपि किसी बाह्य गतिविधि की तीव्रता आन्तरिक गतिविधि की तीव्रता पर निर्भर करती है और यद्यपि तुलना, मूल्य, मान्यता, कला आदि से सम्बन्धित प्रतिक्रियायें फलीभूत होने में सामान्यतः अधिक समय लेती हैं, परन्तु गर्म तवे से अँगुली छू जाने जैसी आकस्मिकता की दशा में *प्रतिवर्ती क्रिया*[31] के कारण दर्द की अनुभूति से भी पहले प्रतिक्रिया स्वरूप अँगुली तवे से दूर हट जाती है। आपराधिक आकस्मिकता की दशा में मूल प्रेरण—आपराधिक एन्टीना द्वारा अपराध तरंगों का

बोध—से अन्तिम प्रतिक्रिया—अपराध कारित होने तक की सम्पूर्ण प्रक्रिया—अपराधकर्ता द्वारा उस कार्य की अपराधता की अनुभूति होने के पहले ही एक क्षण में घटित हो सकती है। सामान्यावस्था में, यह प्रक्रिया अपना वाँछित समय लेती है और यह समय आपराधिक एन्टीना पर अपराध तरंगों के आक्रमण की तीव्रता, आपराधिक मानस की संवेदनशीलता, सम्बन्धित मण्डल में आपराधिक प्रवृत्ति के बन्धनों की भेद्यता, जन्मी आपराधिक इच्छा के कम्पनों की आवृत्ति तथा आपराधिक शरीर की वह अपराध कारित करने की योग्यता पर निर्भर करता है। सम्पूर्ण प्रक्रिया को अपराध से मुक्ति दिलाने वाले किसी भी आन्तरिक अथवा बाह्य कारक द्वारा किसी भी स्तर पर समाप्त किया जा सकता है। आपराधिक कार्य के वास्तव में निष्पादित होने पर आपराधिक इच्छा की आपराधिक कार्य में अन्तिम रूप से अभिव्यक्ति हो जाती है। यह ऊर्जा के पारस्परिक परिवर्तन की क्लिष्ट प्रक्रिया और तरंगों का जो भी खेल है, मेरे, आपके और सबके लिये रहस्य रहा है।

अपराध का अभौतिक पक्ष

सांद्रित स्थिर पूर्णता में हुए उस मूल प्रस्फुटन जो कि सार्वभौम द्विभाजन का जन्मदाता था, ने उस मूल शून्यता के पूर्णत्व को तनु करते हुए कारणत्व की एक *प्रतिवर्ती शृंखलात्मक प्रक्रिया*[1] का आरम्भ किया। विभिन्न अन्तरालों पर विभिन्न घटनाओं व तथ्यों के रूप में विभिन्न मात्राओं व गुणों में अभिव्यक्त होते हुए कम्पायमान और अकम्पायमान ऊर्जा अन्तरिक्ष में प्रलम्बित भी रही और यात्रा भी करती रही। पूर्ण ऊर्जा विस्फोट के उपरान्त अपना पराचुम्बकत्व, पराविद्युत्व और पराश्रव्य—दृष्यता—नहीं बनाये रख सकी और इस प्रकार से उसके द्वारा निर्मित सभी प्राकृतिक घटनायें पूर्ण अघटित अनिर्मित शून्यता के अधीनस्थ रहीं। यहाँ तक कि एक घटना से उत्पन्न होने वाली उपघटनाओं में भी *द्विभाजन के सार्वभौम सिद्धान्त*[2] के अनुसार पूर्णत्व नहीं रहा क्योंकि उनमें छिपी ऊर्जा में पूर्णता के अतिरिक्त अन्य सभी कुछ निर्मित करने की क्षमता एवं योगयता रही। यद्यपि *अपकेन्द्रित संरचना*[3] सामान्यतः भौतिकीय प्रवृत्ति की तथा प्रदूषित हुई, ऊर्जा का *अभिकेन्द्रित प्रतिवर्ती परिवर्तन*[4] सर्वोच्च आत्मा में *विलीन*[5] होने से पहले अभौतिकीय, अप्रदूषित तथा पूर्णत्व की ओर रहा।

पौधे स्वयं की शीत से रक्षा करने के लिये अपनी बाह्य सतह को तरल के स्राव से गीला कर लेते हैं, हरे पौधे अपना भोजन स्वयं बनाते हैं। मनुष्य दोनों कार्यों में से कोई भी कार्य नहीं कर सकता। ऊर्जा-परिवर्तन की अग्रगामी प्रक्रिया में जहाँ एक ओर मनुष्य के पर्याप्ति के गुण में अधोपतन हुआ और निर्भरता में वृद्धि हुई, वहीं प्रकृति ने संरचना की एक व्यवस्थित प्रक्रिया अपनाते हुए पारस्परिक विरोधी घटनाओं को अन्तरिक्षीय पटल पर प्रदर्शित किया। जब प्रोटॉन का जन्म हुआ तो इलेक्ट्रॉन का जन्म अधिक दूर नहीं था; हरियाली के भूखण्ड और रेगिस्तान के समुद्र दोनों का ही प्रकृति में साथ-साथ उद्भव हुआ। रात्रि और दिवस, प्रसन्नता और दुख, चट्टान और बालू, कठोरता और नम्रता प्रकृति में एक साथ आये। यहाँ तक कि अमीबा भी छुपे हए प्रारूप में लैंगिक द्विभाजन के साथ पैदा हुआ जिसने बाद में प्रारम्भिक रूप से आदिकालीन उभयलिंगियों में अपने पंख फैलाये। प्रकृति से निरन्तर अन्तःक्रियायें होने के कारण सजीव और निर्जीव सभी निर्मित वस्तुओं की तीक्ष्णता के स्तर में ज्यामितीय प्रगति होती गयी जिससे द्विभाषीकरण पृथ्वी के सर्वोच्च प्राणी में

चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया। द्विभाजन के परिणामस्वरूप ही मनुष्य के चरित्र की शाखायें बसन्त ऋतु में फलती-फूलती हैं और पतझड़ में पत्तियाँ गिरा देती हैं। ऋणात्मक अथवा बुराई की सर्वाधिक सम्पन्न शाखा आपराधिक व्यक्तित्व के रूप में विकसित हुई जिसकी आपराधिक एन्टीना और आपराधिक आत्मा अपराधता के फूलों से लदी दो उप-शाखायें हैं।

अपनी अन्तिम इच्छा पूछे जाने पर जब रानी ने बताया कि वह राजा की गोद में प्राण त्याग करना चाहती है तो राजा ने तलवार से उसे तुरन्त मार डाला क्योंकि उस समय वह राजा की गोद में लेटी हुई थी। केवल एक मात्र कार्य भी द्विभाजन प्रदर्शित करता है—एक ओर आपराधिक विकृति की पराकाष्ठा और दूसरी ओर विकृत प्रेम का प्रदर्शन। यहाँ तक कि सूक्ष्मतम तरंग भी बिना उतार-चढ़ाव के यात्रा नहीं कर सकती। दूध को फूँक कर ठण्डा करने में इस बात की भी सम्भावना रहती है कि फूँकने से हानिकारक जीवाणुओं के उसमें मिल जाने से वह दूषित हो जाये। उचित से अनुचित और बुराई से अच्छाई को पूर्णतः अलग नहीं किया जा सकता है। धनात्मकता और ऋणात्मकता के धागे प्रकृति में साथ-साथ बुने हुए हैं, यद्यपि उनका अनुपात हर जगह भिन्न-भिन्न है। पराबैंगनी किरणों के विकिरण के प्रभाव से बचने के लिये यूरोप निवासी की अपेक्षा अफ्रीका निवासी की त्वचा में *मैलानिन वर्णक*[6] की मात्रा अधिक होती है; अन्तरिक्षीय स्तर पर यदा-कदा तथा भिन्न-भिन्न रूप से द्विभाजन करने में प्राकृतिक चयन के दबाव के सिद्धान्त का भी अभिन्न सहयोग रहा है। इसी प्रकार से, प्रत्येक आपराधिक कार्य, विचार अथवा इच्छा दोनों प्रकार की प्रक्रिया अभिव्यक्त करती है, एक ओर अपराधी अपने कार्य से किसी दूसरे पर कोई प्रभाव डालता है और दूसरी ओर वह दूसरा उसी प्रकार से तथा उसी अनुपात में उस अपराधी पर प्रति-प्रभाव डालता है। प्रभाव और प्रति-प्रभाव की पारस्परिकता उभय पक्षों की आपराधिक कार्य सम्बन्धित चेतना, विवेक और आपराधिक प्रवृत्ति पर तथा इस कारक पर कि एक पक्ष की आपराधिक प्रवृत्ति दूसरे पक्ष की आपराधिक प्रवृत्ति को कितना प्रभावित कर सकती है, निर्भर करती है। अपराधता *प्रतिघात*[7] भी करती है।

एक छत सदैव छत नहीं होती है और एक फ़र्श सदैव फ़र्श नहीं होता है क्योंकि एक व्यक्ति की छत दूसरे के लिये फ़र्श बन सकती है। यदि किसी दुर्घटना में घायल मृतप्रायः व्यक्ति का जीवन अस्पताल ले जाने पर बच जाता है तो अंन्त्येष्टिकर्ता की जीविका को हानि पहुँचती है। कुछ भी पूर्णतः अहानिकारक अथवा हानिकारक, शुद्ध अथवा अशुद्ध, अच्छा अथवा बुरा नहीं है। सभी आपराधिक कृत्यों में कुछ-न-कुछ अच्छाई अवश्य होती है, चाहे वह किसी भी श्रेणी एवं प्रकृति की क्यों न हो। एक कुख्यात अपराधी को अवैधानिक रूप से बन्दी बनाकर अवरुद्ध करना उसके लिये बुरा होगा क्योंकि इससे उसकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के मूल अधिकार का हनन

होगा, परन्तु उस समाज के हित में यह अच्छा होगा जिससे उसे कुछ समय के लिये अलग कर दिया गया है। एक ट्रक पर सामान अधिक ऊँचाई तक अथवा अधिक मात्रा में लादना एक ओर अपराध है परन्तु दूसरी ओर इससे ईंधन की बचत भी होगी। किसी ट्रक को यातायात नियमों का उल्लंघन करने पर विधिपूर्वक बन्द कर देना अच्छा है क्योंकि उसने विधि के नियमों का उल्लंघन किया है, परन्तु बुरा भी है क्योंकि इससे वस्तुओं का पर्याप्त परिवहन प्रभावित होगा। अपूर्णत्व का सिद्धान्त अपराधता, आपराधिक कार्यों और अपराधियों पर भी लागू होता है। सभी अपराधी समान हैं परन्तु कुछ दूसरों की अपेक्षा अधिक समान हैं; सभी मनुष्य अपराधी हैं परन्तु कुछ दूसरों की अपेक्षा अधिक अपराधी हैं; सभी अपराधी मनुष्य हैं परन्तु कुछ दूसरों की अपेक्षा अधिक मनुष्य हैं। वह जो अच्छाई में बुराई और बुराई में अच्छाई को अवलोकित कर लेता है, अपूर्णत्त्व के सिद्धान्त को भली प्रकार से समझ लेता है; वह जिसके कार्यों से अधिकतम संख्या के लिये अधिकतम अच्छाई होती है—क्योंकि अपूर्णत्व के सिद्धान्त के अनुसार सभी के लिये पूर्ण अच्छाई करना असम्भव है—सही अर्थों में सच्चा मनुष्य है।

यह पूछे जाने पर कि उसने अनाधिकृत रूप से मछलियाँ क्यों पकड़ीं, अभियुक्त ने स्पष्टीकरण दिया कि उसे एक विचारण से सम्बन्धित हुए व्यय का भुगतान करना था; पुनः पूछे जाने पर कि उसका विचारण किस अपराध हेतु किया गया था, अभियुक्त ने बताया कि वह विचारण अनाधिकृत रूप से मछलियाँ पकड़ने के अपराध से सम्बन्धित था। अपराध-कारणतत्व की प्रकृति एवं प्रवृत्ति वृत्तीय होती है। स्पर्श्य, बोध किये जाने योग्य अथवा निराकार अपराधता, अपराध तरंगें और आपराधिक प्रवृत्ति आपस में सम्बद्ध होती हैं। अपराध तरंगें अपना प्रभाव आपराधिक प्रवृत्ति पर डालती हैं जिसका परिणाम स्पर्श्य, बोध किये जाने योग्य अथवा निराकार अपराध होता है जो पुनः नवीन अपराध तरंगें उत्पन्न करता है। माध्यम और परिणाम पारस्परिक क्रियाओं द्वारा एक-दूसरे पर पारस्परिक प्रभाव डालते हैं, और यह कड़ीबद्ध प्रक्रिया तब तक चलती रहती है जब तक कि उसकी किसी कड़ी को बीच में कहीं पर भंग न किया जाये। यह प्रक्रिया और उसके प्रत्यक्ष एवं परोक्ष प्रभाव दूरगामी होते हैं और यहाँ तक कि आने वाली कई पीढ़ियाँ भी उससे प्रभावित हो सकती हैं। किसी बालक की प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष आक्रमणशीलता धीरे-धीरे एक व्यस्क की हिंसक अपराधता में परिवर्तित हो सकती है; आज जो अन्यायसंगत तथ्य नगण्य है, वही कल अन्यायसंगत इतिहास रच सकता है; अपराधता की प्रकृति कोणीय होती है। चूँकि अपराध की प्रक्रिया विधिक एवं सामाजिक नियमों, विधियों तथा व्यवस्थाओं से परे है परन्तु प्राकृतिक नियमों, विधियों और व्यवस्थाओं से परे नहीं है, अतः अपराध की प्रक्रिया एक प्राकृतिक तथ्य है। टिड्डे के समान ही बुराई को भी अंकुरित होते ही समाप्त कर देना चाहिए जिससे अपराधों की कड़ी निर्मित

न हो सके।

प्राकृतिक प्रिज़्म ने आदम के संवेदन को इन्द्रधनुष के रंगों के समान विभाजित कर दिया और आदम के सेब के बीजों से कई शाखायें अंकुरित हुईं। इसका परिणाम एक ओर आपराधिक प्रवृत्ति का तीव्रतर एवं परिमार्जित होना हुआ तथा दूसरी ओर अपराधता में विभिन्न जातियों और उप-जातियों का निर्माण हुआ। *अपराध संश्लेषण*[8] की प्रक्रिया से अपराधता और आपराधिक प्रवृत्ति का और परिमार्जन हुआ। चूँकि अपराधता का विकास अत्यन्त तीव्र गति से तथा ह्रास अत्यन्त मध्यम गति से होता है, अतः नये अपराधों के उत्पादन तथा अपराधता के परिमार्जन में *ग्रेशम का मुद्रा प्रचलन का सिद्धान्त*[9] पूर्णरूपेण लागू होता है। बुराई का वह सूक्ष्मतम प्रारूप जिसके प्रभाव में नेपेन्थीज़ पौधा अपनी आवश्यकता को पूरा करने के लिये दूसरे का जीवन समाप्त कर देता है, प्राकृतिक चयन के दबाव में आकर बुराई की प्रवृत्तियों (आपराधिक भी) में विकसित हो गया। आनुवांशिक विकास की प्रक्रिया—जीन्स के तत्त्वों, सम्मिश्रण और आवृत्तियों में परिवर्तन—ने भी सार्वभौम रूप से परिमार्जित हुई आपराधिक प्रवृत्ति के विभिन्न गोदामों का पोषण किया। प्रकृति से जिस अपराधता को एल्गी के *डी. एन. ए.*[10] ने स्थितिज रूप में सोख लिया था, मनुष्य के डी. एन. ए. ने उसे पुनः वातावरण में गतिज रूप में प्रवाहित कर दिया। अत्यन्त क्लिष्ट विधिक, सामाजिक एवं सामाजिक-विधिक प्रक्रियायें भ्रष्टाचार को आमन्त्रित करती हैं।

अपराध के धागे—चाहे वह समाज, विधि अथवा राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त हों अथवा नहीं, खोजे जा सकें अथवा नहीं और पहचाने जा सकें अथवा नहीं—शिक्षा, धन, धर्म, साम्प्रदायिकता, राजनीति, सेक्स, जाति, वातावरण, नगरीय, ग्रामीण, सफ़ेदपोशी, व्यक्तित्व, व्यक्तिगतता, अधैर्यता, अवसर, आवेश, आवेग, घटना, परिस्थिति, भावना, अनादतन, प्रतिनिधिक दायित्व, सामान्य आशय, सामान्य उद्देश्य, अवप्रेरण, षड्यन्त्र, पिछली, अपराध के समय की तथा बाद की अपराध को दी गयी सहायता, अपूर्ण अपराध, न्यास भंग, विश्वास भंग तथा व्यावसायिक आदि में की गयी प्रतिदिन की कूटकृति एवं धोखाधड़ी के चरखों पर बुने जाते हैं। अपने कर्तव्य के प्रति उदासीनता अथवा भूल अपराध है; जहाँ बोलना आभारी हो और न बोलने से व्यक्तिगत लाभ हो रहा हो, वहाँ मौन रहना अपराध है। आपराधिक भूल अथवा आपराधिक मौन में आपराधिक इच्छा निषेधात्मक प्रकृति की होने के कारण अपराधी को अच्छाई करने से रोकती है, सक्रिय अपराधों में वह इच्छा सकारात्मक रूप से आदेशात्मक होती है। सामान्य आशय और सामान्य उद्देश्य की अवस्था में यह सभी भागीदारों—चाहे वे सक्रिय हों या निष्क्रिय—में सामान्य रूप से बँटी होती है। अवप्रेरण और षड्यन्त्र की दशा में आपराधिक इच्छा का जन्म अवप्रेरित अथवा षड्यन्त्र किये गये अपराध में वास्तविक रूप से भाग लेने के लिये नहीं होता है, वरन्

अवप्रेरक अथवा षड्यन्त्रकर्ता को दोषी मानने के लिये उसका मौखिक अथवा सांकेतिक स्तर पर भाग लेना ही पर्याप्त है। प्रतिनिधिक दायित्व की घटनाओं में दूसरों के द्वारा किये गये आपराधिक कृत्य में प्रतिनिधिक रूप से उत्तरदायी व्यक्ति की मौन एवं परोक्ष रूप से सहमति अथवा मान्यता होती है। क्या एजेन्सी, निगम, निकाय अथवा संगठन द्वारा किये गये अपराधों में समान तरंग लम्बाई और आवृत्ति के विद्युत चुम्बकीय संयोग सामान्य आपराधिक इच्छा अवक्षेपित करने के लिये साथ-साथ कम्पन नहीं करते हैं ? यहाँ तक कि *मोलाश*[11] भी साम्प्रदायिक नरसंहार अथवा युद्ध अपराधों को देखकर अश्रु विसर्जित करता होगा। अपराधी वे भी हैं जो विचार के स्तर पर अपराध करते हैं। अपना तथा दूसरों का समय नष्ट करने वाले, अपने स्वार्थ के लिये दूसरों के मुँह से रोटी छीनने वाले और भावनात्मक स्तर पर शोषण के द्वारा अनुचित लाभ उठाने वाले भी अपराधी हैं; अपराधी वे भी हें जिनमें यह स्वीकारने का साहस नहीं है कि वे अपने विचारों, भावनाओं और कार्यो में ग़लत रहे हैं। अपराधी वे भी हैं जो अपने और दूसरों के प्रति प्राकृतिक दायित्वों का निर्वाह नहीं करते हैं।

अपराध का कारणत्व कई आपराधिक कारणों और आपराधिक प्रभावों के संकुचन और प्रसारण का परिणाम होता है। यदि कोई आपराधिक कारण निर्बाध रूप से किसी आपराधिक प्रभाव में अवक्षेपित होता है—चाहे अन्य कारक भाग लें अथवा नहीं—तो वह उस प्रभाव को प्राप्त करने के लिये पर्याप्त कारण है परन्तु वह आवश्यक कारण नहीं भी हो सकता है। यदि कोई आपराधिक प्रभाव किसी विशेष आपराधिक कारण और कुछ अन्य कारणों का सदैव उत्पादित तथ्य है, तो वह विशेष आपराधिक कारण उस प्रभाव की प्राप्ति के लिये आवश्यक तो है परन्तु पर्याप्त नहीं है। यदि कोई आपराधिक कारण बिना किसी अन्य कारण की आवश्यकता के सदैव ही किसी आपराधिक प्रभाव को घटित कर सकता है तो वह कारण उस विशेष प्रभाव की प्राप्ति के लिये आवश्यक और पर्याप्त दोनों है। अपराध तरंग, आपराधिक एन्टीना अथवा आपराधिक आत्मा व्यक्तिगत रूप से अपराध घटित होने के लिये आवश्यक है परन्तु पर्याप्त नहीं है। अपराध तरंगें, आपराधिक एन्टीना और आपराधिक आत्मा संयुक्त रूप से आपराधिक इच्छा—जो अपराध के घटक का तुरन्त कारण है—को जन्म देने के लिये आवश्यक भी हें और पर्याप्त भी हें। अन्य कारण अपराध घटित होने के लिये न तो आवश्यक ही हैं और न ही पर्याप्त हैं।

अच्छा कारणत्व अच्छा परिणाम उत्पन्न करेगा, बुरा कारणत्व बुरा परिणाम उत्पन्न करेगा; यदि कहीं कुछ त्रुटि हो गयी है तो यह मूल कारणत्व का ही दोष है। मूल कारणत्व के मूल दोष में अनवरत वृद्धि होती रहती है जिससे अन्तिम प्रभाव में *कोणीय दोष*[12] उत्पन्न हो जाते हैं। ऊर्ध्व स्तर पर, पुष्प उस जड़ से ऊँचाई पर होता है जो उसे पकड़े रहती है। परन्तु यदि जड़ सार्वभौम रूप से सोखने का कार्य न करती

तो क्या पुष्प सार्वभौम रूप से देने का कार्य कर सकता था ? कोई भी कारण उच्चतर अथवा निम्नतर नहीं है, वरन् सभी कारण पराभौतिकीय स्तर पर समान रूप से मुख्य हैं। किसी का स्वयं का कारणत्व ही यह निर्धारित करता है कि वह व्यक्ति क्या पाने के योग्य है; अपराध का कारणत्व *प्रतिवर्ती प्रहार*[13] करता है।

विभिन्न प्रारूपों, परिस्थितियों आदि में हुए ऊर्जा के विभिन्न निर्माणों में पाये गये द्विभाजन के अतिरिक्त अच्छाई और बुराई क्या है ? चाकू से प्याज काटना अच्छाई है; उसी चाकू से किसी का गला काटना बुराई है। जीवन को बचाने के लिये औषधियों में विष का प्रयोग अच्छाई है; जीवन को समाप्त करने के लिये उसका किया गया प्रयोग बुराई है। उच्चतर कोटि की सिंचाई की सुविधा प्राप्त करने के लिये हिमालय पर्वत पर किया गया आणविक विस्फोट अच्छाई है; अमानवीय लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु मानव-जाति पर किया गया उसका विस्फोट बुराई है। अपनी व्यवस्था को बिना हानि पहुँचाए दूसरों की सेवा करना अथवा दूसरों की व्यवस्था को बिना अप्राकृतिक रूप से अव्यवस्थित किये स्वयं का पोषण करना अच्छाई है; अपने मूल्य पर दूसरों की सेवा करना अथवा दूसरों के मूल्य पर स्वयं का पोषण करना बुराई है। किसी भी रूप में किये गये बोध, भावना, इच्छा, विचार, कार्य अथवा मूल द्वारा अन्तरिक्ष की विद्युत-चुम्बकीय व्यवस्था में उन्नति करना अच्छाई है; उसमें बोध इत्यादि द्वारा अवनति लाना बुराई है। कहीं भी हुआ कोई भी परिवर्तन प्रत्येक को प्रभावित करता है; अतः अपनी स्वयं की विद्युत चुम्बकीय व्यवस्था में सुधार करना अच्छाई है, जबकि उसमें अवनति करना बुराई है। अच्छाई और बुराई और कुछ नहीं है वरन् अच्छाई और अधिक अच्छाई, या बुराई और अधिक बुराई, या उच्च और उच्चतर, या निम्न और निम्नतर, या श्रेष्ठ और श्रेष्ठतर या हीन और हीनतम में पारस्परिक सम्बन्ध मात्र है।

भटके हुए को अपने सुधार का कोई भी अवसर न देना अच्छाई नहीं है; किसी असुधार्य विध्वंसक का विनाश करना बुराई नहीं है। अगर किसी व्यक्ति द्वारा आत्मा के शुद्धीकरण हेतु कोई भी प्रयास नहीं किया जाता (सार्वभौम मूल अवगुणों को सुषुप्तावस्था में लाना और सार्वभौम मूल सद्गुणों को अंकुरित करना ही शुद्धीकरण है), तो यह न ही अच्छाई है और न ही बुराई है; वह व्यक्ति निष्क्रियता के सागर में डूबते-उतराते हुए अपनी विद्युतचुम्बकीय साम्यता बनाये रखता है। अच्छाई और बुराई की धारणाओं के मापदण्ड व्यक्तिगत, सामाजिक, चारित्रिक, साँस्कृतिक, नैतिक, रूढ़िगत, सामूहिक तथा सार्वजनिक मान्यताओं पर आधारित होते हैं। क्या ये मापदण्ड प्राकृतिक अथवा अन्तरिक्षीय मापदण्डों के विपरीत अथवा प्रतिकूल हो सकते हैं ? केवल प्रकृति द्वारा स्थापित तथा अन्तरिक्ष में प्रलम्बित अच्छाई और बुराई के मूल मापदण्डों के तत्त्व ही व्यक्तिगत आदि मापदण्डों की चादर बुन सकते हैं। किसी भी कार्य में निर्मित भौतिकता एवं अभौतिकता की मात्रा तथा अनिर्मित

शून्यता का अंश दोनों ही उस कार्य में अच्छाई और बुराई के स्तर को निर्धारित करते हैं। अच्छाई और बुराई की परख सदैव *अधिकतम की प्रसन्नता के सिद्धान्त*[14] की कसौटी पर ही करना अच्छाई नहीं होगी। पिता की हत्या इस उद्देश्य से कर देना कि उससे उसके सभी पुत्र उसकी सम्पत्ति पाने के योग्य हो जाने से प्रसन्न हो जायेंगे, हो सकता है कि वास्तव में उसके सभी पुत्रों को प्रसन्न कर दें, परन्तु समय से पूर्व ही एक व्यक्ति के जीवन का किया गया अन्त इस कार्य को अच्छाई का रंग नहीं दे सकेगा। अधिकतम की प्रसन्नता का सिद्धान्त अधिकतम की अच्छाई के सिद्धान्त से श्रेष्ठतर नहीं हो सकता।

यह पूछे जाने पर कि उस दिन उन्होंने क्या अच्छा कार्य किया, स्काउट बालकों ने अपने गुरु को बताया कि उन्होंने एक वृद्धा को सड़क पार कराई। पुनः यह पूछे जाने पर कि उन्होंने इतने छोटे से कार्य के लिये पूरा दिन कैसे व्यतीत कर दिया, बालकों ने बताया कि वह वृद्ध महिला सड़क पार नहीं करना चाहती थी। अच्छा अथवा बुरा सोचना और यह जानना कि जो सोचा गया है वह क्रमशः अच्छा या बुरा है, दो भिन्न तथ्य हैं। किसी कार्य का बाह्य रूप नहीं वरन् उसको करने की आन्तरिक इच्छा की प्रकृति ही उसे अच्छा अथवा बुरा बनाती है। किसी सद्‌गुण को सही दिशा में तथा सार्वभौम रूप से मान्यता प्राप्त उचित कारण हेतु व्यक्त करना अच्छाई है; किसी अवगुण को ग़लत दिशा में तथा सार्वभौम रूप से मान्यता प्राप्त अनुचित कारण हेतु व्यक्त करना बुराई है। किसी भी इच्छा, अनुभूति, भावना, विचार, कार्य अथवा भूल की योग्यता की परीक्षा ऐसी इच्छा आदि के कर्ता पर उस इच्छा आदि के कारण पड़े प्रभाव के आधार पर की जाती है। यदि वह इच्छा आदि उसके कर्ता की विद्युत चुम्बकीय व्यवस्था में उन्नति करती है तो वह इच्छा आदि अच्छी है; यदि वह इच्छा आदि उसके कर्ता की विद्युत चुम्बकीय व्यवस्था में अवनति करती है तो वह इच्छा आदि बुरी है। पैर से काँटा निकालने वाला काँटा उस पुष्प से कम अच्छा नहीं है जो सुगन्ध बिखेरता है; विषाक्त पुष्प उन काँटों से बुरा है जो गुलाब की रक्षा करते हैं।

मैं साक्षात्कार हेतु समय से नहीं पहुँच सका क्योंकि ट्रेन के समय के बारे में मुझे मिथ्या जानकारी थी; मैं ट्रेन में बैठा परन्तु साक्षात्कार हेतु नहीं पहुँच सका क्योंकि नदी पर त्रुटिपूर्ण बना पुल बाढ़ के कारण बह गया; मैं साक्षात्कार हेतु नहीं पहुँच सका क्योंकि भयंकर भूचाल के कारण रेल की पटरियाँ उखड़ गयीं। प्रथम असफ़लता मेरी त्रुटि के कारण हुई, दूसरी सामाजिक अव्यवस्था के कारण और तीसरी प्राकृतिक अव्यवस्था के कारण हुई। केवल प्राकृतिक व्यवस्था अथवा अव्यवस्था के कारण उत्पन्न हुआ प्रभाव ही भाग्य की परिधि के अन्तर्गत आता है। खूँटे से बँधी गाय खूँटे और रस्सी से बने वृत्त के भीतर की सारी घास खा सकती है, यह उसका भाग्य है; वह वास्तव में कितनी घास खाती है, यह उसकी स्वतन्त्र इच्छा है। दुर्भाग्य है कि हम जानकारी के आधार पर अपने चेतन मस्तिष्क से किये गये कार्यों और

उनके परिणामों का श्रेय अपनी स्वतन्त्र इच्छा को देते हैं तथा अज्ञानता के आधार पर अपने अचेतन मस्तिष्क से किये गये कार्यों और उनके परिणामों को भाग्य कहकर पुकारते हैं। हम अधिक मात्रा में मद्यपान करते हैं, यह हमारी स्वतन्त्र इच्छा है; परिणामस्वरूप हम पेप्टिक अल्सर और यकृत के रोगी हो जाते हैं और इसे भाग्य की देन कहते हैं। स्वतन्त्र इच्छा में भिन्नता के कारण यह तथाकथित भाग्य व्यक्तिगत, सामाजिक, जैविक आदि हो सकता है; विभिन्नता के जीवाणु स्वतन्त्र इच्छा में ही होते हैं। क्रिया, एक आक्रमण, स्वतन्त्र इच्छा है; प्रतिक्रिया, प्रत्याक्रमण, भाग्य न होकर उस कार्य का परिणाम है। हमारी उन चेतन अथवा अचेतन असफ़लताओं को जिन्हें उस कार्य (आपराधिक कार्य भी सम्मिलित हैं) के बारे में और अधिक जानकारी प्राप्त करके विजित किया जा सकता था, भाग्य के परिणामस्वरूप हुई असफ़लतायें नहीं कहा जा सकता। मस्तिष्क की त्रुटियाँ और हृदय के दोष भिन्न होते हैं।

स्वतन्त्र इच्छा और भाग्य किसी दुपाये के दोनों पैरों की स्थिति के अतिरिक्त और क्या हैं ? एक पैर उठाया जा सकता है, यह स्वतन्त्र इच्छा है; उसके बाद दूसरा नहीं उठाया जा सकता, यह भाग्य है। अधिकांशतः, भाग्य का वस्त्र लोग व्यक्ति अथवा समाज द्वारा कारित प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष कार्यों के धागों से ही बुन देते हैं। एक व्यक्ति द्वारा किया गया कार्य दूसरे के तथाकथित एवं आभासी भाग्य का कारण बन सकता है; इसीलिये कर्म करने पर मनुष्य का अधिकार है परन्तु चूँकि दूसरों के कार्य भी उत्सर्जित तरंगों द्वारा उसके कर्म पर प्रभाव डालते हैं, अथवा डाल सकते हैं, इसलिये परिणाम पर मनुष्य का पूर्ण अधिकार नहीं है। जितनी ही चैतन्य एकाग्रता से कोई कार्य किया गया है, प्राप्त हुआ परिणाम इच्छित परिणाम के उतने ही समीप होगा; उदासीन अथवा विरक्त भाव से कार्य करने पर इच्छित परिणाम से अन्यथा परिणाम प्राप्त होंगे। जो व्यक्ति पूर्ण अवसर, साहस और एकाग्रता रखते हुए भी अपराध कारित नहीं करता है, वही वास्तव में धनात्मक रूप से सत्य आत्मा है।

मनुष्य अपने *संचित किये जाने योग्य कार्यों*[15] को करने के लिये स्वतन्त्र है; यहाँ तक कि *भाग्य से जुड़े तथा संचित कर्मों*[16] के परिणामों में भी पश्चाताप करने तथा अपराध से मुक्ति के प्रयासों द्वारा परिवर्तन लाया जा सकता है। यदि सेंध लगायी गयी दीवार गिर जाने से चोर उसमें दब जाता है, तो क्या वह सेंध स्वयं उसने ही नहीं लगायी थी ? हथेली एवं मस्तिष्क की रेखाओं पर विचारों का नियन्त्रण रहता है; विचार कार्य से श्रेष्ठ है तथा आत्मा भाग्य से उच्चतर है। क्या कार्य करना है, यह विवेक द्वारा निर्धारित होता है; कैसे कार्य करना है, यह चेतना द्वारा निर्धारित होता है। बीज बोना स्वतन्त्र इच्छा है; उगी हुई फ़सल भाग्य है। यद्यपि बीज और फ़सल के बीच कई स्तर हैं, तथापि क्या भाग्य की जड़ें स्वतन्त्र इच्छा में नहीं पाई जाती हैं ? यद्यपि संवेदी अनुभव दिये गये प्रेरण की प्रकृति के आधार पर ही प्रतिक्रिया करते हैं, तथापि क्या उस प्रतिक्रिया की प्रकृति एवं विस्तार अन्तःकरण में विद्यमान किसी

सुषुप्त और फिर क्रियाशील निराकार पर निर्भर नहीं करती है ? *तारे प्रेरित करते हैं परन्तु विवश नहीं करते।*[17] भाग्य अवश्य ही स्वतन्त्र इच्छा के द्वार पर दस्तक देता है; यह पूर्ण रूपेण स्वतन्त्र इच्छा पर निर्भर करता है कि वह द्वार खोले अथवा न खोले।

तब मेरे द्वारा प्रदर्शित की गयी आपराधिक अभिव्यक्तियों का उत्तरदायित्व कौन वहन करेगा ? मैं ? आप ? वह ? समाज ? परिस्थितियाँ ? वातावरण ? प्रकृति ? या सब ? स्वतन्त्र इच्छा ? भाग्य ? और यदि सब, तो मुख्य उत्तरदायित्व कौन वहन करेगा ? मैं आदि या सब ? प्रत्येक निवासी ने यह अवधारणा रखते हुए कि उसके द्वारा डाले गये एक गिलास पानी से उस खाली तालाब के अवयवों के रंग में कोई अन्तर नहीं दिखाई पड़ेगा जिसे एक गिलास दूध से भरने का आदेश पिछली रात प्रत्येक निवासी को राजा ने दिया था, एक गिलास पानी ही उसमें डाला। प्रातःकाल पूरा तालाब दूध के स्थान पर पानी से भरा था। क्या प्रत्येक निवासी व्यक्तिगत रूप से तालाब में मात्र एक गिलास पानी डालने के लिये ही उत्तरदायी है ? या पूरे तालाब के लिये जिसमें केवल पानी ही भरा गया ? जागरूक, निडर और कल्पनाशील हैं वो जो अपराध करने के लिये सदैव तत्पर हैं। अपराधियों में यह सम्भव है कि असामान्य जैविक अथवा मनोवैज्ञानिक *विशेषक*[18] न हों परन्तु *अप्राकृतिक संलक्षण*[19], अप्राकृतिक अपराध तरंगों की धाराओं एवं अप्राकृतिक चुम्बकत्व की शरीर में उपस्थिति की सम्भावना से अनायास ही इन्कार नहीं किया जा सकता। एक पत्ती यद्यपि पूरे वृक्ष की जानकारी में हरे रंग से पीली हो जाती है तथापि ऐसा होने में वृक्ष की कोई सहमति अथवा योगदान नहीं होता। क्या घर की पुताई में रंगों के चयन में स्वयं निर्जीव घर का कोई योगदान नहीं होता है ? दुर्गन्धित खाद सुगन्धित गुलाब को उसके बीज के गुण के कारण ही उत्पन्न करती है। बाह्य कारण आन्तरिक व्यवस्था एवं वातावरण से उच्चतर नहीं हो सकता।

यद्यपि क्रोमोज़ोम ग्रहों से निकली किरणों से प्रभावित होते हैं, अन्तरिक्षीय तरंगें जीवन की प्रत्येक घटना को प्रभावित कर सकने की क्षमता रखती हैं तथा उत्तरजीविता आपराधिक विशेषकों के प्रदर्शन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है, प्राकृतिक चयन चेतन और अचेतन दोनों ही स्तरों पर स्वैच्छिक होता है। अपराधता के प्रदर्शन एवं प्रसारण में *विशेषकों के प्रथक्कीकरण का नियम*[20] *स्वधारणा के सिद्धान्त*[21] के प्रत्यक्ष नियन्त्रण एवं देखरेख में ही लागू होता है। अवधारणा चेतन तथा अचेतन दोनों ही स्तरों पर आरम्भिक जीवन में प्राप्त हुए सन्देशों का अपने स्तर से बोध करने पर निर्मित होती है। बाह्य शिक्षक अन्तःकरण को जागृत करने के लिये केवल सुझाव ही प्रस्तावित कर सकता है; इस प्रस्ताव को स्वीकारने, समझने तथा उस पर प्रतिक्रिया करने के लिये अन्तःकरण ही उत्तरदायी है।

जिस प्रकार से काँटों भरे पुष्प का जन्म होने में जलवायु का भी योगदान है,

प्रसन्न होने में बसन्त ऋतु का भी सहयोग होता है तथा अन्तर्राष्ट्रीय आदर्शता का प्लेटफ़ार्म तैयार करने के लिये राष्ट्रीय गतिविधियाँ भी माध्यम होती हैं, उसी प्रकार से अपराधी भी अपने द्वारा किये गये अपराध के लिये पूर्णतः उत्तरदायी नहीं हो सकता है और न ही पीड़ित अपने पीड़न के लिये निर्दोष एवं अनुत्तरदायी समझा जा सकता है। किसी कार्य विशेष में अपराधता की मात्रा तथा अपराधकर्ता का उत्तरदायित्व निर्धारित करने के लिये उस कार्य विशेष से जुड़ी हुई पिछली सभी सुसंगत घटनाओं और कार्यों का निरीक्षण एवं परीक्षण आवश्यक है। अपराधता राई को पर्वत बनाते हुए चक्रविधि ब्याज की दर से विकसित होती है।

विषाक्त रासायनिक सम्मिश्रण से सामान्यतः बचते हुए उसे सावधनीपूर्वक दूर रखा जाता है और यदि ऐसा सम्भव न हो तो उसे नष्ट कर दिया जाता है। क्या त्रुटिपूर्ण रूप से निर्मित रोबॉट का भविष्य भी यही नहीं होगा ? आग की भट्टी के द्वार में फँसा हुआ हाथ पूरे शरीर की जल कर मृत्यु हो जाने से बचाने के लिये काट दिया जाता है। एक रोग, यद्यपि वह पूर्वनिश्चित ही क्यों न हो, को दूर करने के लिये उसका उपचार किया जाता है। कैंसर युक्त गर्भाशय तथा गैंगरीन से प्रभावित पैर को असाध्य होने पर शरीर के कल्याण हेतु ऑपरेशन द्वारा निकाल दिया जाता है। एक हानिकारक वस्तु अथवा जीव को परिरुद्ध रखा जाता है। असुधार्य व्यक्तियों—जो प्राकृतिक व्यवस्था की निरन्तरता के लिये स्थाई संकट हैं—को इस अन्तरिक्ष के साथ नृत्य करने का कोई भी अधिकार नहीं है। अन्तरिक्षीय व्यवस्था को नष्ट करने वाले असुधार्य का नाश करना प्रकृति के नियमों के अनुकूल है तथा अपराध नहीं है। बुराई को दूर करने के लिये फुँफकारना आवश्यक है।

तब वह अचानक परिवर्तन क्यों और कैसे जिसके द्वारा दुष्ट साधु हो जाते हैं और कभी-कभी ऐसा एक क्षण में ही घटित हो जाता है ? क्या ऐसा आपराधिक प्रवृत्ति के मण्डल के स्थान पर उसके विपरीत मण्डल में कम्पन होने के कारण नहीं होता ? और क्या ऐसा नहीं होता कि आपराधिक एन्टीना शनैः शनैः अपनी कार्यशीलता अचेतन स्तर पर तथा बिना यह तथ्य व्यक्ति की जानकारी में आये खोने लगता है ? क्या ऐसा नहीं होता कि व्यक्ति अचेतन रूप से अपराध तरंगों के अतिरिक्त अन्य तरंगों से प्रभावित होता रहा है और एक ही क्षण में उस व्यक्ति को अपने हृदय और मानस के अचानक परिवर्तन का चेतन स्तर पर आभास हो जाता है ? प्रत्येक परिवर्तन सदैव निराकार अचेतन स्तर पर आरम्भ होता है, यद्यपि वह छुपा हुआ परिवर्तन अत्यन्त ही अल्पकाल में चेतन स्तर पर भी प्रकट हो सकता है और ऐसा प्रतीत होता है कि परिवर्तन की सम्पूर्ण प्रक्रिया अचानक ही हुई है। मनुष्य का बोध, अस्तित्व एवं व्यवहार समय के एक ही क्षण पर चेतन और अचेतन स्तर पर परस्पर पूर्णतः विरोधी भी हो सकता है।

सम्पूर्ण अन्तरिक्ष तरंगों से निर्मित अच्छे और बुरे बलों के बीच हो रहे संघर्ष

का प्रतीक है। बुराई और अच्छाई एक-दूसरे के पूरक हैं; जड़ सोखती है जबकि फूल देता है; दोनों का ही सह-अस्तित्व है। दीर्घकाय वृक्ष दूसरे वृक्षों जो कि उसके साये में अंकुरित हुए हैं, की वृद्धि को अवरुद्ध कर देता है; बड़ी मछली छोटी मछली की तथा सिंह हरिण की हड्डियों को चबाता है; वीनस फ़्लाई ट्रैप अपनी नाइट्रोजन की प्यास बुझाने के लिये कीटों का भक्षण करता है; मनुष्य अपनी तथाकथित आवश्यकताओं एवं अपेक्षाओं की पूर्ति तथा अपने उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु दूसरे मनुष्य का लूटता एवं नष्ट करता है। दीर्घकाय वृक्ष उस बीज के, जिसमें वह सोया हुआ था, वृद्धि के गुण के कारण दीर्घकाय होता है और वृद्धि की इस प्रक्रिया में बिना किसी दुराशय के अन्य वृक्षों, जो उसके साये में हैं, की वृद्धि अवरुद्ध कर देता है; बड़ी मछली छोटी मछली को तथा सिंह हरिण को अपनी भूख की मूल आवश्यकता को पूरा करने के लिये मारते एवं खाते हैं और भरे पेट वे किसी का भी माँस नहीं चीरते हैं; वीनस फ़्लाई ट्रैप कीटों से नाइट्रोजन की प्राप्ति अपने जीवित रहने के लिये, और न कि अपने ऐश्वर्य, सुख एवं रुचि के लिये करता है; मनुष्य बिना किसी प्राकृतिक आवश्यकता, अपेक्षा अथवा उद्देश्य के भी अपराध करता है। अपनी योग्यता के अनुसार वृद्धि करना कोई अपराध नहीं है; दूसरों का आकार काटते हुए वृद्धि करना अपराध है। तीन दिन के भूखे द्वारा रोटी का एक टुकड़ा चुराना तथा नग्न व्यक्ति द्वारा वस्त्र का एक टुकड़ा चुराना प्रकृति द्वारा मान्यता प्राप्त अपराध हैं; रोटी के लिये मक्खन चुराना अथवा कन्धों पर एक कोट होते हुए दूसरा चुराना प्रकृति की सीमाओं और मान्यताओं से परे अपराध है। वह जो अपनी रोटी के लिये मक्खन की दूसरी पर्त प्राप्त करने का प्रयत्न यह जानते हुए करता है कि यह दूसरी पर्त किसी भूखे के मुँह से छीनी गयी है, अपराध करता है। प्रकृति द्वारा मान्यता प्राप्त अपराध भी अपराध हैं, तथापि ग्राह्य हैं। समाज में अपराध और प्रकृति में अपराध के मध्य सुसंगत अनुरूपता ही प्राकृतिक सन्तुलन है। केवल प्रकृति द्वारा अत्यन्त ही प्राकृतिक रूप से प्रदर्शित किये गये अपराध के स्तर तक समाज में किया गया अपराध ही स्वीकार्य होना चाहिए। केवल वही अपराध जो मनुष्य की मूल प्राकृतिक आवश्यकताओं से सम्बन्धित हैं और इन आवश्यकताओं के दबाववश कारित किये गये हैं, प्राकृतिकता का चिह्न धारण करते हैं। यद्यपि कुछ आवश्यकतायें विभिन्न कारकों पर निर्भर रहने के कारण भिन्न-भिन्न हो सकती हैं, तथापि मूल रूप से प्राकृतिक आवश्यकताओं की दो शाखाओं वाली *टहनी*[22] सम्पूर्ण अन्तरिक्ष में समान है।

अपराध से मुक्ति

अन्तरिक्ष की रचना होने पर आरम्भिक स्थिर पूर्ण शून्यता ने अन्तरिक्षीय कम्पनों की लय के साथ कटिबद्ध होकर नृत्य करते हुए अपनी शान्त स्वतन्त्रता खो दी परन्तु उस अकम्पित *यथापूर्व स्थिति*[1] को प्राप्त करने का प्रयास सदैव जारी रखा। प्राथमिक कम्पनों, जो अन्तरिक्षीय माध्यम में गुप्तावस्था में अगिनत स्वतन्त्र एवं एक-दूसरे पर निर्भर प्रारम्भिक इच्छाओं के द्योतक थे, ने अन्तरिक्षीय संश्लेषण द्वारा विभिन्न कम्पायमान उत्पाद उत्पन्न किये जिन्होंने आगे और अधिक क्लिष्ट कम्पनों अथवा इच्छाओं को उत्पन्न किया। प्रत्येक कम्पित ऊर्जा ने अपने कम्पनों में अकम्पित क्षमता का भी सदैव वहन किया, और अब भी करती है, अर्थात् प्रत्येक विस्फोटित इच्छा में अविस्फोटक तत्त्व भी सदैव विद्यमान रहा, और अभी भी रहता है, जिसका सदैव यही प्रयत्न रहा, और अभी भी रहता है, कि वह कम्पन अथवा इच्छा समाप्त हो जाये। क्या कोई भी आपराधिक इच्छा स्वयं में उत्पन्न न हो—चाहे सम्पूर्ण अन्तरिक्ष अपराधता कम्पित कर रहा हो—ऐसी स्थिति की प्राप्ति अपराध से मुक्ति की स्थिति नहीं होगी ? अथवा यदि ऐसी असम्भवता के पद्य को वास्तविकता के गद्य में परिवर्तितत नहीं किया जा सकता तो क्या व्यक्तिगत और सामाजिक अपराध को प्रकृति द्वारा मान्यता प्राप्त अपराध की परिधि तक ही सीमति रखने का प्रयास करते हुए *परिणामवादी निर्वाण*[2] भी प्राप्त नहीं किया जा सकता ? और यदि परिणामवादी निर्वाण की स्थिति प्राप्त कर ली जाये तो क्या अपराध एवं अपराधता से *सम्पूर्ण निर्वाण*[3] की स्थिति की प्राप्ति का लक्ष्य बहुत दूर रह पायेगा ?

किसी भी प्राकृतिक घटना चक्र के अनुसार ही वर्षा-जल-वाष्प-बादल-वर्षा के चक्र को बीच में किसी भी स्तर पर भंग किया जा सकता है; *प्रकाश संश्लेषण*[4] की प्रक्रिया प्रकाश या जल की आपूर्ति रोककर समाप्त की जा सकती है; जीवन-मृत्यु चक्र गर्भ-निरोधक किसी भी उपाय को अपनाकर प्रभावित किया जा सकता है; अपराध घटित होने के चक्र को अपराध तरंगों की आपूर्ति रोककर अथवा आपराधिक एन्टीना या आपराधिक प्रवृत्ति के मण्डल को निष्क्रिय करके भंग किया जा सकता है। चूँकि *शरीर के भीतर अपराधता का विकास होना अवश्यंभावी है*[5], इसलिये इस निर्गत अपराधता को धूम्रपान, कुछ सीमा तक मदिरापान, अत्यधिक व्यय, स्वास्थ्य

की अल्प उपेक्षा, उच्च स्वर में बोलना अथवा भोजन चबाना आदि प्रकारों द्वारा प्रदर्शित होते रहना चाहिए जिससे *अच्छाई और बुराई का अन्तरिक्षीय सन्तुलन बना रहे*[6]*।* कौन कहता है कि दो; परन्तु अगर तुम दे नहीं सकते तो कम-से-कम प्रकृति से प्रकृति को मत छीनो।

किसी भी आपराधिक इच्छा का जन्म होने पर आपराधिक प्रवृत्ति के मण्डल के तार अन्तरिक्ष की समान रूप से लयबद्ध आत्माओं को प्रभावित करते हुए ठीक उसी प्रकार से कम्पायमान हो जाते हैं जैसे किसी वाद्य यन्त्र के लयबद्ध तार कम्पायमान होते हैं। आपराधिक आत्मा के सदैव के लिये सुषुप्तावस्था में चले जाने अथवा आपरीधिक प्रवृत्ति के मण्डल के निष्क्रिय हो जाने से उस बंजर मण्डल में अपराधता के बीजों के अंकुरण की सम्भावना समाप्त हो जायेगी तथा उस मण्डल में कोई भी कम्पन कभी भी नहीं हो सकेगा। जब् शरीर एवं मानस के कार्यकलापों पर ऐच्छिक नियन्त्रण हो सकता है, तो आत्मा के कार्यकलापों पर शरीर, मानस एवं आत्मा के सम्पूर्ण त्रिक के प्रभाव का नियन्त्रण क्यों नहीं हो सकता ? यदि उत्प्रेरक कारक किसी अपराध की प्रक्रिया में वृद्धि कर सकता है, तो वातावरण में विद्यमान प्रति-उत्प्रेरक न केवल उस आपराधिक प्रक्रिया में ह्रास ला सकते हैं वरन् उसे समाप्त भी कर सकते हैं। *हिपेटाइटिस बी*[7] वाइरस में रोग व उसकी रोकथाम दोनों के ही कारक होते हैं—प्रथम कारक प्रबल होता है। *आनुवांशिक अभियान्त्रिकी*[8] द्वारा रोग के कारक को निष्क्रिय करके टीका बनाया जाता है और तभी उससे पीलिया रोग के उत्पन्न होने से रोकने का उपाय किया जाता है। *आत्मा-विज्ञान*[9] की विभिन्न शाखाओं के द्वारा आपराधिक आत्मा के *प्राकृतिक-वैज्ञानिक शुद्धकीरण*[10] के लिये खोजे गये प्रयासों से तथा *प्राकृतिक-शैक्षिक*[11] एवं *प्राकृतिक-धार्मिक प्रवचनों*[12] से आने वाले वंश को अपराधता से मुक्त करने का प्रयास किया जा सकता है।

व्यक्तिगत, सामूहिक अथवा सामाजिक इच्छाओं, विचारों, अन्तःक्रियाओं आदि से तथा बुराई और अच्छाई के बीच अनवरत चल रहे संघर्ष में बुराई की अच्छाई पर जीत के कारण उत्पन्न हुई अपराध तरंगें किसी भी लयबद्ध आत्मा को कम्पायमान करने के पूर्व अन्तरिक्ष में बहुत अधिक समय तक विद्यमान रह सकती हैं एवं यात्रा कर सकती हैं। साँद्र अम्ल गहराई तक जला देता है; तनु अपराध तरंगें मात्र हल्की आपराधिक इच्छायें ही उत्पन्न करने में सहायक हो सकेंगी। अन्तरिक्ष में विद्यमान वर्तमान अपराध तरंगों को वातावरण में अच्छे विचार-स्पन्दों को उत्पन्न करके तथा वैज्ञानिक परिवर्तनों की प्रक्रिया द्वारा उनकी विध्वंसक ऊर्जा को निर्माण ऊर्जा के विभिन्न प्रारूपों में परिवर्तित करने से उन्हें तनु अथवा नष्ट किया जा सकता है। सूर्य की किरणों को एक स्थान पर केन्द्रित करके अग्नि उत्पन्न की जा सकती है; वाष्पीय दाब से इंजन को गति दी जा सकती है; अपराध तरंगों में छिपी ऊर्जा, यदि धनात्मक दिशा में पोषित कर दी जाये, से एक सम्पूर्ण उद्योग संचालित किया जा सकता है।

जल की लगातार गिरती बूँदें पत्थर में भी गड्ढा बना देती हैं; अपने चारों ओर विद्यमान बुरे विचारों, इच्छाओं, भावनाओं और क्रियाओं के स्पन्दनों को, इससे पहले कि तुम्हारे पुत्र का अवयस्क आपराधिक एन्टीना वयस्क हो जाये, नष्ट करने के लिये अच्छे विचारों, इच्छाओं, भावनाओं तथा क्रियाओं के स्पन्दन उत्पन्न करो।

प्याज, लहसुन, मद्य आदि की गन्ध का अपना क्षेत्र होता है। साधारण जुकाम में घ्राणेन्द्रिय की कलियाँ सामान्यतः निष्क्रिय हो जाने के कारण सामान्य गन्धों का बोध नहीं होता; आपराधिक एन्टीना की कलियों को भी निष्क्रिय कर देने से प्रभावित व्यक्ति द्वारा अपराध तरंगों का बोध किया जाना सम्भव नहीं हो सकेगा। *ल्यूकोडर्मा*[13] में त्वचा में विद्यमान मेलानिन के त्रुटिपूर्ण चयापचय के कारण वह श्वेत हो जाती है; आपराधिक एन्टीना के अभिग्राहकों को भी इसी प्रकार पुनः लयबद्ध किया जा सकता है कि वे अपराध एवं अपराधिता से भिन्न तरंग लम्बाइयाँ ग्रहण करें। गिरगिट स्वतः अपनी त्वचा का रंग बदल सकता है; क्या मनुष्य का त्रिक एच्छिक परिवर्तन की योग्यता के सम्बन्ध में गिरगिट के त्रिक से भी निम्न स्तर का है ? क्या *निरोधक कोशिकायें*[14] *उद्दीप्त गतिशीलता*[15] को विचार-बोध के स्तर पर भी प्रतिबद्ध नहीं करतीं ? यदि आपराधिक मस्तिष्क की *निरोधक प्रतिक्रिया*[16] में वृद्धि कर दी जाये तो आपराधिक एन्टीना को निष्क्रिय करना कोई अधिक कठिन कार्य नहीं होगा।

रक्त-धारा में सभी हारमोन प्रवाहित होते हैं परन्तु सभी हारमोन सम्पूर्ण शरीर के सभी तन्तुओं को प्रभावित नहीं करते; प्रत्येक हारमोन अपना सन्देश केवल उन्हीं विशिष्ट कोशिकाओं को देता है जो उस विशेष सन्देश को ग्राह्य करने के लिये लयबद्ध होती हैं। किसी व्यक्ति का आपराधिक एन्टीना अपराधता से जितना परे लयबद्ध होगा, उतनी ही कम उस एन्टीना में अपराध तरंगों को खींचने की शक्ति होगी। *एक्यूप्रेशर पद्धति*[17] से क्रोध आदि की अनुभूतियों को शान्त किया जा सकता है; आपराधिक अनुभूतियों को एक्यूप्रेशर द्वारा समाप्त कर देने का प्रयास मनुष्य कब आरम्भ करेगा ? आपराधिक एन्टीना के चैनल का दिशा परिवर्तन अथवा उनको पूर्णरूपेण निष्क्रिय कर देना एक क्रमिक प्रक्रिया है; जब तक सम्पूर्ण निष्क्रियता प्राप्त न हो जाये, तब तक *बाह्य एवं आन्तरिक*[18] दोनों ही रूप से मानस की धनात्मक एकात्मकता तथा *व्यस्तता पद्धति*[18] से आपराधिक एन्टीना के दिशा-परिवर्तन का प्रयास किया जा सकता है।

बुल-फ़ाइटिंग के खेल में आप अपनी आपराधिक प्रवृत्ति से ही लड़ते हैं। मुक्केबाज़ी, कुश्ती, निशानेबाज़ी, फुटबाल या क्रिकेट खेल में गेंद को ज़ोर से मारने आदि से आपराधिक प्रवृत्ति के अंकुरित होने से उत्पन्न हुई आक्रमणशील प्रवृत्तियों की तुष्टि होती है। आपराधिक प्रवृत्ति के मण्डल से ऊर्जा मुक्त होने से तुरन्त पूर्व की अवस्था मनुष्य में लगातार बने रहने से असन्तोष उत्पन्न होता है जिसके आधार पर धीरे-धीरे उसका व्यक्तित्व असहायता और निराशा का हो जाता है। स्व-धिक्कार

तथा स्व-अवमूल्यन की लगातार चलती इस प्रक्रिया से उत्पन्न हुए तनाव एवं दबाव के कारण इसका परिणाम कैंसर आदि रोगों के रूप में भी फलित हो सकता है। *बिना अंगुली वाला मनुष्य वधस्थल से इसीलिये वापस किया गया*[20] क्योंकि वह बलिदान के लिये अपूर्ण था। अपनी निन्दा कभी भी नहीं करनी चाहिए क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति का इस जीवन प्रवाह में कुछ-न-कुछ महत्त्व एवं योगदान अवश्य हो सकता है। *बोध से क्रिया की शृंखला*[21] में आशावाद एवं स्व-उत्थान की भावना बनाये रखना शारीरिक, मानसिक, आत्मिक एवं प्राकृतिक स्वास्थ्य के लिये हितकारी है। एक से सौ तक गिनने से कई बार क्रोध शान्त हो जाता है, घाव को भरने की सभी औषधियों में समय सर्वोत्तम है; सौ से एक तक गिनना जन्मी अपराध इच्छा के वाष्पन के लिये एक स्वास्थ्यप्रद प्रक्रिया होगी। प्राकृतिक दृश्यों का गम्भीरतम् एवं प्राचीनतम रोगियों को भी स्वस्थ करने में परम सहयोग रहा है; आपराधिक प्रवृत्ति के मण्डल में उत्पन्न दाब की मुक्ति के लिये तथा ऐसा दाब उत्पन्न ही न होने देने के लिये प्रकृति वास्तव में सुरक्षा वाल्व का कार्य करती है।

अपराधता से जुड़े विशेषक बिना दूषित हुए यात्रा करके आगामी वंशों में स्वयं को प्रदर्शित कर सकते हैं। चट्टान में जन्मी गतिशीलता की इच्छा आनुवांशिकी से बालू में आई और अन्त में अमीबा ने उस इच्छा की पूर्ति की। *आनुवांशिक स्तर*[22] पर, आज यदि हम किसी युवती की लज्जा का मात्र काल्पनिक स्तर पर ही हरण करते हैं तो कल हमारा पौत्र उस युवती की पौत्री का वास्तव में लज्जा हरण कर सकता है। किसी व्यक्ति में मद्यपान की प्रवृत्ति होते हुए भी यह सम्भव है कि वह आजीवन मद्यपान न करे; किसी व्यक्ति में आपराधिक प्रवृत्ति होते हुए भी यह सम्भव है कि वह आजीवन उसका प्रदर्शन न करे। यद्यपि किसी नियम के अन्तर्गत नहीं वरन् मात्र सावधानीवश, विशेषकों के पृथक्कीकरण का नियम आनुवांशिक रूप से किसी भी अपराधी के दूसरे वंशक्रम में जन्मे प्रत्येक चतुर्थ व्यक्ति पर दृष्टि रखने की चेतावनी देता है। जीन्स के कारण उत्पन्न हुआ आनुवांशिक दोष, फ़ेनिल–फ़ेटोयूरिक जड़ता, भी ठीक हो सकता है; *आनुवांशिक शिल्प*[23] के द्वारा *जीन्स की धारणता के गुण*[24] के सफ़ल उपयोग से अपराध के *विध्वंसात्मक स्तर के विशेषकों*[25] पर नियन्त्रण क्यों नहीं हो सकता ? क्या आने वाले कल में *ऊतक संस्कृति*[26] आनुवांशिक न्यायालय के माध्यम से दोषी को दण्ड देने की अधिकारिणी नहीं होगी ? अपराधता के अनुपात को *सुजनन-विज्ञान*[27] $अ^2 : ब^2 : 2\,अ\,ब$[28] (अ = अच्छाई, ब = बुराई) के समीकरण से नियन्त्रित करने में सहायक हो सकती है।

आप व्यक्तिगत रूप से एक परिवार हैं। आप अपना हाथ नहीं काट सकते क्योंकि इससे आपको पीड़ा होती है; आप अपने पुत्र का गला नहीं काट सकते क्योंकि इससे भी आपको पीड़ा होती है; आप एक अपरिचित का गला काट देते हैं क्योंकि इससे आपको लेशमात्र भी कष्ट नहीं होता। आप प्रकृति के एक अंग हैं;

सम्पूर्ण प्रकृति आपके भीतर है; शेष अन्तरिक्ष परिवार की उपेक्षा करके आप प्राकृतिक रीति से कैसे जीवित रह सकते हैं ? योग्यतम प्रारूप में उत्तरजीविता तभी सम्भव है जब आप और आपके अन्तरिक्षीय परिवार के सभी सदस्य अस्तित्व में साथ-साथ रहें। मानव द्वारा निर्मित व्यवस्थाओं में *विच्छेद*[29] सम्भव हो सकता है परन्तु प्राकृतिक व्यवस्था में ऐसा नहीं है। यद्यपि अनुरक्ति के मौलिक एवं प्राकृतिक सिद्धान्तों को बनाये रखने के लिये अनासक्ति आवश्यक है, तथापि असम्बद्धता प्रकृति में अच्छाई और बुराई के सन्तुलन को भंग कर देती है।

एक व्यक्ति दो पुत्रों और तीन अखरोटों के साथ असमंजस्यता में था क्योंकि दोनों पुत्र दो अखरोट चाहते थे। पशु अपनी मूल आवश्यकता के अनुसार पीता है परन्तु मनुष्य गले तक और अपने ऐश्वर्य के लिये भी पीता है। हमें पशुओं के समान पीना चाहिए क्योंकि अमौलिक आवश्यकताओं का मार्ग अत्यन्त ही विशाल है और उस पर कोई रुकावटें भी नहीं हैं। *आर्कमिडीज*[30] के लिये एक टब भी बहुत बड़ा था परन्तु *सिकन्दर*[31] के लिये पूरी दुनिया छोटी थी। जो अपने पास है और जो दूसरे के पास नहीं है, उस पर चैतन्य रूप से ध्यान सकेन्द्रित करने से सन्तोष होता है तथा इसके विपरीत दूसरों की वस्तुओं और जो अपने पास नहीं है, पर अधिक ध्यान देने से ईर्ष्या व द्वेष और आत्मा में अस्थिरता उत्पन्न होती है। अपनी भौतिक वस्तुओं से कभी भी अधिकृत नहीं होना चाहिए; भौतिकता आत्मा का वध कर देती है और उसके दाह-संस्कार में मुस्कुराते हुए सम्मिलित होती है।

कब्र पर लिखे एक अभिलेख 'अपने आप को मेरे पीछे आने के लिये तैयार करो' को पढ़कर एक आपत्तिकर्ता ने उसके आगे यह लिखा कि वह अपने को कब्र में सोये हुए व्यक्ति के पीछे जाने के लिये तब तक तैयार नहीं कर सकता जब तक उसे मालूम न हो कि मृतक किस मार्ग पर गया है। वे कार्य जो प्रत्यक्ष रूप से सद्गुण लगें परन्तु वास्तव में बुरी प्रवृत्तियों में वृद्धि कर रहे हों, तुरन्त ही त्याग दिये जाने चाहिए, चाहे कर्ता को उनके बारे में अच्छाई का ही विचार क्यों न हो। यह पूछे जाने पर कि वे कहाँ जा रहे हैं, सभी यात्रियों ने अपना गन्तव्य स्थान बताया जबकि बस परिचालक वास्तव में यह पूछ रहा था कि अपनी-अपनी मृत्यु के उपरान्त वे कहाँ जा रहे हैं। छोटे लक्ष्य और तुरन्त प्राप्ति के प्रयास एवं उपाय यद्यपि पूर्ति की मात्रा कम कर देते हैं तथापि उन लक्ष्यों की प्राप्ति के साधनों के प्रकार, अच्छे और बुरे दोनों रूप से, असीमित कर देते हैं। केवल स्व-पूर्ण व्यक्ति को ही छोटे-छोटे लक्ष्य चुनने की आवश्यकता नहीं होती, अपने में रिक्तता दूसरों के अवशोषण का आधार बनती है।

जब इंग्लैण्ड के राजा हेनरी अष्टम ने एक कटु पत्र फ्राँस के शासक फ्राँसिस प्रथम के पास ले जाने के लिये सर थामस मूर से कहा तो सर मूर ने भय प्रकट किया कि फ्राँस के शासक उसका सिर-विच्छेद करा देंगे। हेनरी अष्टम द्वारा यह आश्वासन दिये जाने पर कि वे इंग्लैण्ड निवासी प्रत्येक फ्राँसीसी का सिर-विच्छेद प्रतिकर के रूप

में करा देंगे, सर मूर ने बताया कि उनमें से कोई भी सिर उनके कन्धों पर नहीं लग सकेगा। कोई भी हानि किसी हो चुकी हानि के प्रभावों को समीकृत, अकृत अथवा निष्प्रभावित नहीं कर सकती। कोई भी क्रान्ति, चाहे वह व्यक्तिगत स्तर की हो अथवा सामूहिक स्तर की, बुराई के द्वारा नहीं लाई जा सकती; बुराई के बदले भलाई करना ही सर्वोत्तम समकार है। मन्त्री-पद हेतु एक साक्षात्कार में एक कमरे के द्वार को खोलना था। तीन प्रतियोगी कम्प्यूटर युक्त तकनीकी द्वारा तालों को खोलने की प्रक्रिया अपनाने हेतु गणित लगाने लगे; चौथा व्यक्ति कुछ देर तक बैठा सोचता रहा और तत्पश्चात् उसने उठकर हाथ से द्वार खोल दिया; द्वार में ताला लगा ही नहीं था। जब कोई वस्तु प्रथम दृष्ट्या कठिन प्रतीत होती हो तो सर्वाधिक सरल उपलब्ध प्रयास द्वारा उसका समाधान खोजना सर्वोत्तम उपाय है। यह सम्भव है कि जो हमने बोध किया है, वास्तविक तथ्य उससे भिन्न हो; बदला लेना आरम्भ करने के पूर्व सौ तक गिनना अधिक उचित है। प्रतिशोध प्रतिघाती होता है।

विद्युत चुम्बकीय उत्पादक[32] में आपराधिक इच्छा का जन्म होने पर विद्युत चुम्बकीय रिसाव होता है जिसके परिणामस्वरूप स्वयं के अच्छे विद्युत चुम्बकीय सम्मिश्रण का ह्रास होता है। प्रत्येक आपराधिक इच्छा अन्तरिक्षीय विद्युत चुम्बकीय व्यवस्था की तुलना में स्वयं की विद्युत चुम्बकीय व्यवस्था की अवनति कर देती है। इस अस्थाई अवनति से स्वयं में कुव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है जो अन्तरिक्षीय व्यवस्था में कुव्यवस्था कारित कर देती है; इसके परिणामस्वरूप स्वयं में स्थाई कुव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है क्योंकि स्वयं का अन्तरिक्ष से स्थाई सम्पर्क बना रहता है और अनवरत रूप से दोनों के मध्य ऊर्जा-विनिमय होता रहता है। हमारे अन्तःकरण का साक्षी हमारी निन्दा करता है और अन्तःकरण का न्यायाधीश हमें हमारे द्वारा किये गये अपराध के लिये दण्ड देता है; यह हो सकता है कि यह निन्दा और दण्ड हमारे मानस के अचेतन स्तर पर हो। ऐसा होने से हमारे भीतर और अधिक कुव्यवस्था हो जाती है। कहीं भी विद्यमान कुव्यवस्था से सभी स्थानों की व्यवस्थाओं को ग्रहण लगेगा; जो स्वयं से प्रेम करना चाहता है, वह अपराध नहीं कर सकता और स्वयं को प्रेम करता है, अपराध नहीं करता।

यह पूछे जाने पर कि आकाश क्यों नहीं गिरता, पुत्र को बताया गया कि वह खम्भों पर खड़ा है; पुनः यह पूछे जाने पर कि वे खम्भे कहाँ हैं, पिता की अँगुली भीषण गर्मी में खेत जोतते पसीने से भीगे किसान की ओर उठ गयी। स्वयं, समाज तथा अन्तरिक्ष की विद्युत चुम्बकीय व्यवस्था के उत्थान हेतु किया गया कार्य, विचार अथवा इच्छा ही कर्तव्य है; कर्ता को उसके कर्तव्य की प्रकृति के आधार पर नहीं वरन् वह उस कर्तव्य को किस भावना और लगन से करता है, इस पर तोलना चाहिए। *अन्तरिक्षीय कर्तव्यों*[33] का अनुपालन अपराध से निर्वाण का निश्चित मार्ग है। किसी घटना की अनवरतता बनाये रखने से अधिक ऊर्जा उसके नियन्त्रण में व्यय होती है;

अतः ऋणात्मकता को रोकना प्रथम चरण होगा, धनात्मक प्रयास तत्पश्चात् स्वतः ही आरम्भ हो जायेंगे। अवगुणों के त्याग और प्राकृतिक नियमों के अनुपालन से आत्म-नियन्त्रण अन्तरिक्षीय कर्तव्यों का निष्पादन करने के लिये निश्चित मार्ग है। हम अपने को प्रकृति के नियमों के बन्धनों में जितना अधिक रखेंगे, उतना ही अधिक हम आपराधिक बन्धनों से मुक्त रहेंगे।

अपना अपराध सरलता से स्वीकार करने वाले को उत्थान का अवसर देना चाहिए; अपराध-संस्वीकृति एक मुलायम फाहे के समान है जो भविष्य में अपराध को रोकने का कार्य भी करती है। हिमाच्छादित मार्ग पर चलते हुए पुत्र ने पिता द्वारा बर्फ़ पर बनाये हुए पदचिह्नों का अनुसरण किया और वह उसमें नहीं गिरा। यह समाज के पुत्र का कर्तव्य है कि वह बनाये गये पदचिह्नों का परिवर्तित वातावरण के अनुसार अनुसरण करे; यह समाज के पिता का कर्तव्य है कि वह ऐसे पदचिह्न बनाये जिनका परिवर्तित वातावरण के अनुसार अनुपालन किया जा सके। बाल्यावस्था और तरुणावस्था में क्रियाशील और व्याख्यात्मक शिक्षा एवं जानकारी दिये जाने की आवश्यकता है; यद्यपि पिशु को बलपूर्वक जल नहीं पिलाया जा सकता। संसार के मानचित्र के प्रति अज्ञान एक बालक को एक फटा मानचित्र जोड़ने को कहा गया; बालक ने उस मानचित्र के पीछे छपे मनुष्य के चित्र को जोड़ दिया और संसार स्वतः ही ठीक प्रकार से जुड़ गया। प्रकृति के नियमों का अनुपालन करते हुए अपनी आत्मा को प्राकृतिक रूप से पुनर्निर्मित करो; सम्पूर्ण अन्तरिक्ष स्वतः ही यथासमय पुनर्निर्मित हो जायेगा।

गली के मोड़ पर एक अन्धे और एक युवक के आपस में टकराने पर युवक चिल्लाया, "क्या तुम देख नहीं सकते कहाँ जा रहे हो ?" अन्धे ने उत्तर दिया, "क्या तुम वहाँ नहीं जा सकते जहाँ देख रहे हो ?" *अपराधता की टिकटी*[34] में पकड़े जाने की सम्भावना से बचने के लिये, दोषारोपण से पूर्व सौ तक गिनना चाहिए। उच्चतर स्तर की ऊर्जा निम्नतर स्तर की ऊर्जा को अपने स्तर में परिवर्तित कर लेती है; अन्तरिक्ष में अच्छाई और बुराई के प्राकृतिक सन्तुलन के पुनर्स्थापन और स्थायित्व के लिये अवगुणों की ऊर्जा के स्तर से सद्गुणों की ऊर्जा का स्तर ऊँचा रखना चाहिए। जो सामान्यतः दूसरों को नापसन्द करते हैं, वे सामान्यतः दूसरों द्वारा नापसन्द किये जाते हैं। *प्राकृतिक भोजन*[35] प्रतिकारपूर्ण स्मृतियों को विस्मृत करने, शरीर की विद्युतचुम्बकीय व्यवस्था के उत्थान में तथा आपराधिक प्रवृत्ति के मण्डल एवं आपराधिक एन्टीना को निष्क्रिय करने में सहायक होता है। सद्चेतना का अपना अहम् होता है; अन्तःकरण से पुकारने पर जब वह मनुष्य को व्यस्त पाती है तो पुनः सुषुप्तावस्था में चली जाती है। और यदि उसकी आवाज़ सुन ली गयी, तो एक क्षण में ही वह उसके सर्वस्व को पुनर्निर्मित कर सकती है। *फ़ादर वाल्श की मुस्कुराहट*[36] में सहस्त्रों संगीनों को पिघला देने की क्षमता है।

विस्तृत प्रति-परीक्षा के बीच, अधिवक्ता ने जब सोते हुए जूरी की ओर

न्यायाधीश का ध्यान आकर्षित कराया तो उन्होंने अधिवक्ता से कहा, "आपने ही इन्हें सुलाया है, अतः आप ही इन्हें जगायें।" उत्तरदायित्व निर्धारित करने में अत्यन्त ही सावधान रहना चाहिए; छान-बीन का आरम्भ स्वयं से करना चाहिए; हो सकता है कि द्वितीय विश्वयुद्ध में हिरोशिमा विध्वंस के लिये प्रथम विश्वयुद्ध का अज्ञात सैनिक ही परोक्ष रूप से उत्तरदायी रहा हो। ऊर्जा का उपयोग यदि निर्माण के लिये नहीं किया जाता है तो उसका दिक्परिवर्तन विनाश की ओर हो जाने की सम्भावना रहती है; किसी व्यक्ति को अच्छाई करने में शीघ्रता करने देना चाहिए (यद्यपि शीघ्रता कार्य को व्यर्थ कर सकती है) जिससे वह कोई बुराई करने की न सोच सके। यद्यपि अन्धकार को धिक्कारने से बेहतर एक दिया जलाना है, यदि कोई व्यक्ति अच्छाई नहीं कर सकता तो इससे पहले कि वह स्वयं बुराई करना आरम्भ कर दे, उसे अपनी ऊर्जा बुराई को धिक्कारने में व्यय करते रहने देना चाहिए। विपरीत दिशा में चल रहे झंझावात में फँसा विमान चालक तभी सुरक्षित रहेगा जब उसका आगे बढ़ने का प्रयास निरन्तर जारी रहेगा; यद्यपि वास्तव में उसका विमान आकाश में स्थिर रहेगा। यदि ऊर्जा का सदुपयोग अपराध से मुक्ति प्राप्त करने में नही किया जा सकता तो उसका व्यय किसी व्यक्ति द्वारा न-अच्छे-न-बुरे कार्यों में करने देते रहना चाहिए। हो सकता है हम अपना भूतकाल नहीं क्रय कर सकते, परन्तु उसका उचित उपयोग करते हुए हम अपने आज को ऐसा आकार दे सकते हैं जिससे हमारा भविष्य उच्चतर स्तर का निर्मित हो सके।

प्रकृति का उपयोग व उपभोग करना एवं उसका आनन्द लेना हमारा प्राकृतिक अधिकार है; प्रकृति के नियमों के बन्धन में रहना हमारा प्राकृतिक कर्तव्य है। वृक्ष हमें साँस लेने के लिये ऑक्सीजन देता है; नदी हमारी प्यास बुझाने के लिये जल लाती है; समाज हमें एक ऐसा वातावरण एवं धरातल उपलब्ध कराने का प्रयास करता है जिस पर हम अपनी इच्छानुसार मनपसन्द किले का निर्माण कर सकें; हम बदले में वृक्ष, नदी और समाज को क्या लौटाते हैं ? लेना और देना प्रकृति का नियम है। दूसरों के साथ वही करो जिसकी तुम दूसरों से अपने लिये अपेक्षा करते हो। यदि तुम किसी की सहायता करने के कर्तव्य से बाधित नहीं होना चाहते, तो तुम्हें किसी को हानि पहुँचाने का अधिकार ही किसने दिया है ? एक मूत्रालय में, आगन्तुक को सामने लिखा मिला, "पीछे देखो," पीछे देखने पर लिखा मिला, "दाहिने देखो," दाहिनी ओर बायें देखने और बाईं ओर ऊपर देखने के लिये लिखा था। ऊपर देखने पर झिड़की के रूप में लिखा था, "इधर-उधर क्या देख रहे हो ? जिस कार्य हेतु यहाँ आये थे, वह क्यों नहीं करते ?" काश ! हम यह नहीं भूलते कि हम किस लिये इस धरती पर आये थे।

एक राशन की दुकान के सामने पंक्ति लगाने के लिये दुकानदार प्रार्थना करता है—कोई प्रभाव नहीं होता; कुछ ग्राहक भी अन्य से प्रार्थना करते हैं—कोई प्रभाव

नहीं; डन्डे के साथ एक पुलिस वाला वहाँ प्रकट हो जाता है—एक क्षण में ही पंक्ति बन जाती है। यूथचरों के लिये भय ही योग्य अस्त्र है; क्योंकि वास्तविक उद्देश्य समाज में व्यवस्था की पुनर्स्थापना, निरन्तरता एवं स्थायित्व बनाये रखना है न कि आदर प्राप्त करना। जो "नहीं देख सकते," उन्हें कम-से-कम अन्तरिक्षीय कुव्यवस्था और अपराधता के प्रतिकूल प्रभावों व परिणामों से भय के माध्यम से ही बचना चाहिए। अपराध तरंगों को भय रहित होकर बोध करने से अच्छा है कि मनुष्य अपराधता का भयपूर्वक बोध करे।

प्रक्रियाओं के प्रकार कई हैं; उद्देश्य मात्र यही है कि अपराध कारणत्व की शृंखला टूट जाये, हिंसा की आँधी रुक जाये और अन्तरिक्षीय कुव्यवस्था के बन्धनों को बाँधकर निष्क्रिय कर दिया जाये। मनुष्य वह भी कर सकता है जिसका उसने अभी तक विचार करने का भी प्रयास न किया हो। अपराध से मुक्ति का कोई भी मार्ग अपनाने पर मार्गी अपराध-कारणत्व की शृंखला के अतिरिक्त और कुछ नहीं खोयेगा। जिस दिन तुम्हारी आत्मा बुराई के विचार-स्पन्दनों से अप्रभावित रहेगी; जिस दिन तुम्हारा एन्टीना अन्तरिक्ष में विद्यमान अपराध तरंगों से लयबद्ध नहीं होगा; जिस दिन तुम्हारा बहुमूल्य त्रिक और अपराधता सामंजस्यता से कम्पायमान नहीं होंगे—तुम अन्तरिक्ष की सभी ऊँचाइयों तक पहुँच पाने की प्रारम्भिक अवस्था में होगे। तभी अपराधता का चुम्बकत्व तुम्हारे विद्युत चुम्बकीय संयोग को आकर्षित नहीं कर पायेगा; तभी तुम्हारी आपराधिक प्रवृत्ति का मण्डल किसी भी परिस्थिति, प्रतिबन्ध, अवस्था, बाध्यता अथवा विवशता के अन्तर्गत कम्पायमान नहीं होगा; तभी कोई भी आपराधिक इच्छा सूक्ष्मतर स्तर पर भी जन्म नहीं लेगी; तभी तुम *दूसरों का प्रकाश*[37] नहीं हरोगे; तभी तुम्हारा सम्पूर्ण अस्तित्व स्वयं एवं शेष अन्तरिक्ष के बीच इस अन्तरिक्ष की सबसे महान् परोक्ष संविदा करने के योग्य होगा—और वह संविदा होगी—"एक-दूसरे को कोई भी हानि न पहुँचाना।" और तभी किन्हीं भी मानवीय, सामाजिक अथवा प्राकृतिक विधियों को भंग करते हुए किसी भी बुराई अथवा अपराध को कारित करने का आशय रखने का चैतन्य स्तर पर कोई भी प्रयास नहीं होगा। तभी एक ऐसी मानवता का जन्म होगा जो अपराध से मुक्ति प्राप्त करने की अवस्था पर पहुँच चुकी होगी। यद्यपि आपराधिक प्रवृत्ति का अस्तित्व रहेगा, तथापि अपराध वाष्पित हो जायेगा।

उपसंहार

कल मेरे त्रिक का अस्तित्व रहे या न रहे, मेरा आत्म आभारी होगा–

उस विधि-विशेषज्ञ का जो मनुष्य निर्मित सभी विधियों की परख प्राकृतिक धरातल पर करेगा;

उस वैज्ञानिक का जो अन्तरिक्ष में विद्यमान अपराध तरंगों की खोज करेगा;

उस मनोवैज्ञानिक, मनोचिकित्सक अथवा शरीर-विज्ञान शास्त्री का जो आपराधिक एन्टीना पर कार्य करेगा;

उस भौतिक-चिकित्साशास्त्री, एक्यूप्रेशर शास्त्री, एक्यूपंचर शास्त्री या प्राकृतिक चिकित्सक का जो आपराधिक एन्टीना की क्रियाशीलता को प्राकृतिक व्यवस्था के अनुरूप व्यवस्थित करेगा;

उस आत्मा-विज्ञान शास्त्री का जो आपराधिक प्रवृत्ति के क्षेत्र में शोध करेगा;

उस विधि शास्त्री का जो अपराध के अभौतिक रूप का गहन अध्ययन करेगा;

उस सुधारक का जो अपराध से मुक्ति की प्रक्रिया को विकसित करेगा;

और

उसका जो सभी का संश्लेषक होगा।

तुरन्त सहयोग

(अ) विचारोत्तेजन

1. जनाब क़मर अदीब
2. डॉ. अनिल कुमार सक्सेना (मेडिकल कॉलेज, लखनऊ)
3. श्री हर्षु लाल श्रीवास्तव (मुख्य अभियोजन अधिकारी)
4. श्री शिशिर प्रधान (ज्योतिषाचार्य एवं जन्मपत्री-दृष्टा)
5. पंडित शिव मंगल शुक्ल (अधिवक्ता)
6. डॉ. प्रभात सिथोले (मनोचिकित्सक, मेडिकल कॉलेज, लखनऊ)
7. डॉ. (श्रीमती) एच. के. पेन्टल (मनोविज्ञान विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय)
8. डॉ. आर. एन. सिंह (भौतिक शास्त्र, लखनऊ विश्वविद्यालय)
9. डॉ. प्रदीप कुमार (भौतिक शास्त्र, डी. ए. वी. कॉलेज, कानपुर)
10. डॉ. विमल कृष्ण सिन्हा (वनस्पतिशास्त्र, डी. ए. वी. कॉलेज, कानपुर)
11. डॉ. (श्रीमती) शेफ़ालिका द्विवेदी (एक्यूप्रेशर, चुम्बकीय एवं प्राकृतिक चिकित्सक)

(ब) पठन-पाठन

1. जस्ट ए मोमेन्ट प्लीज़—जे मॉरिस
2. ए. बी. सी. ऑफ़ ह्यूमन बॉडी—रीडर डाजेस्ट का एकत्रीकरण
3. ए. बी. सी. ऑफ़ ह्यूमन माइन्ड—रीडर डाइजेस्ट का एकत्रीकरण
4. इण्डियन फ़िलॉसफ़ी इन मॉडर्न टाइम्स—वी. ब्रोदोव
5. गेम्स पीपुल प्ले—डॉ. एरिक बर्नी
6. कौटिल्य का अर्थशास्त्र
7. स्वामी विवेकानन्द का दर्शन
8. माइन्ड दि सुप्रीम मास्टर—विद्या भूषण
9. प्लान्ट फ़िज़ियोलॉजी—डॉ. विमल कृष्ण सिन्हा
10. मिस्टिसिज़्म—दि स्पिरिचुअल पाथ—वाल्यूम II—लेखराज पुरी
11. फ़र्स्ट थ्री मिनट्स—स्टीवेन वेनबर्ग
12. ए ब्रीफ़ हिस्ट्री ऑफ़ टाइम—स्टीफ़ेन डब्ल्यू हॉकिंग
13. दि प्रॉफ़ेट—खलील जिब्रान
14. कल्की—डॉ. राधाकृष्णन

15. ओरिजिन्स ऑफ़ मैन—ब्यूटर ज़ारूश
16. सीक्रेट लाइफ़ ऑफ़ प्लान्ट्स—क्लू वैक्सटर
17. दि होली साइन्स—स्वामी श्री युक्तेश्वर गिरि
18. क़ुरान मजीद, हिन्दी एडीशन—वाई एम शफ़ीक एण्ड सन्स, जामा मस्जिद, दिल्ली
19. दि भागवत गीता
20. दि वन्डर दैट वाज़ इन्डिया—ए. एल. बाशम
21. दि ग्रेट साइन्स एण्ड फ़िलॉसफ़ी ऑफ़ गायत्री—श्री राम शर्मा आचार्य
22. क्रिमिनोलॉजी—सिद्दीक
23. सीक्रेट्स ऑफ एस्ट्रोलॉजी—डब्ल्यू. जे. टकर
24. दि कम्प्लीट बुक ऑफ़ पामिस्ट्री—ज्वायस विल्सन
25. सिद्धार्थ—हरमन हेस
26. इण्डियन न्यूमेरोलॉजी—डॉ. एन. डी. श्रीमाली
27. रिलीजन एण्ड कल्चर—डॉ. राधाकृष्णन
28. ए गिफ़्ट ऑफ़ प्रोफ़ेसी—दि फ़िनोमेनल जीन डिक्सन—वाई रुथ मॉन्टगोमरी
29. ए डॉक्टर्स गाइड टू बेटर हेल्थ थ्रू पामिस्ट्री—यूजन शइमन
30. रिपब्लिक—प्लाटो
31. न्यूनेस पिक्टोरियल नॉलेज—एच. ए. पोलक (जनरल एडीटर)
32. बौद्ध दर्शन
33. जैन दर्शन
34. दि बाइबिल
35. दि ओल्ड टेस्टामेन्ट
36. दि फ़िलासफ़ी ऑफ़ लाओत्से एण्ड कान्ग फ़ूत्सेन
37. दि ज़ेन्दावस्ता—एब्रिज्ड एडीशन
38. दि स्टोरी ऑफ़ फ़िलॉसफ़ी—विल ड्यूरेन्ट
39. लीगल एण्ड कॉन्स्टीट्यूशनल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया—डॉ. रामा ज्वायस
40. शार्ट हिस्ट्री ऑफ़ वर्ल्ड—एच. जी. वेल्स
41. दि स्टोरी ऑफ़ मैनकाइन्ड—हेन्ड्रिक विलेम वान लून
42. दि गॉड फ़ादर—मारियो प्यूज़ो
43. आई ऐम ओके—यू आर ओके—थॉमस ए हैरिस
44. विश्व प्रसिद्ध माँसाहारी तथा अन्य विचित्र पेड़-पौधे—डॉ. जगदीश सक्सेना
45. असली इन्सान—बोरिस पोलेवोई
46. बेयर्स लेक्चर्स—सर जॉन एकिल्स
47. दि एक्पैन्डिंग यूनवीर्स—सर विलियम एडिंगटन
48. लेक्चर्स ऑन होमयोपैथिक फ़िलॉसफ़ी—डॉ. केन्ट

इटैलिक शब्दों की आख्या एवं विस्तार

भूमिका

1. *पूर्वजानुरूप प्रवृत्ति*—सामान्यतः, जीन्स के पुनर्भिश्रण के कारण किसी जीव में अथवा उसके किसी अंग में पूर्वजों की किसी विशिष्टता की पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति।

2. *परोक्ष प्रभाव*—उस व्यक्ति के चेतन स्तर के अतिरिक्त किसी अन्य स्तर पर हुआ प्रभाव।

3. *पॉज़िटिविस्ट*—अपराध शास्त्र में 'पाज़िटिव' स्कूल को मानने वाले।

4. *नियतिवाद का सिद्धान्त*—यह विश्वास कि सभी घटनाओं और तथ्यों की अभिव्यक्ति पूर्व नियत है।

5. *क्लासिकलिस्ट*—अपराध शास्त्र में 'क्लासिकल' स्कूल को मानने वाले।

6. *स्वतन्त्र इच्छा का सिद्धान्त*—यह विश्वास कि सभी कार्यों आदि को स्वतन्त्र इच्छा नियन्त्रित करती है।

7. *आकृति-विशेषज्ञ*—मनुष्य की बाह्य आकृति (मुख आदि) के आधार पर उसके चरित्र एवं स्वभाव को जानने की कला का विशेषज्ञ।

8. *कपाल-वैज्ञानिक*—मनुष्य के कपाल का अध्ययन करके उसकी मानसिक योग्यताओं और विशेषकों का चरित्र जानने की कला का विशेषज्ञ।

9. *बिना शिकार के*—जुआ, समलैंगिकता आदि बिना शिकार के अपराध हैं।

10. *अचैतन्य (अदण्डनीय)*—विक्षिप्त एवं अल्पव्यस्क कोई अपाराधिक कार्य उसकी अपराधता का चैतन्य स्तर पर बोध किये बिना करते हैं; इसलिये उन्हें दण्डित नहीं किया जाता।

11. *होमोसेपियन*—मनुष्य का जन्तु वैज्ञानिक नाम।

12. *अन्तरिक्ष की व्यवस्था*—सम्पूर्ण अन्तरिक्ष एक समरूपता एवं सुव्यवस्थित व्यवस्था का अनुपालन करता है—जैसे ग्रह, तारे आदि अपने निश्चित पथ पर ही यात्रा करते हैं, आदि-आदि।

13. *शून्यता*—मूल रूप से स्थिर अनिर्मित अनाभिव्यक्त वह प्राथमिक ऊर्जा जो अन्तरिक्ष के निर्माण के पूर्व एक बिन्दु पर सकेन्द्रित एवं सान्द्रित थी।

14. *एल्गी*—निम्नतर स्तर की वनस्पति।

15. अमीबा—निम्नतर स्तर का कोशीय जीव जो अपने आकार में परिवर्तन करता रहता है।

अध्याय एक

1. तरंगों की अमीबिक जैविक घड़ी—जीवों की भाँति तरंगों की भी जैविक घड़ी होती है जिसके अनुसार उनमें स्थित ऊर्जा में परिवर्तन, पुनःपरिवर्तन, संश्लेषण आदि होता रहता है। अन्तरिक्ष की रचना के बाद से तरंगों की इस घड़ी ने कई बार कई रूप परिवर्तित किये हैं—अतः अमीबिक।

2. समय, दूरी और कारणत्व का प्रथम बन्धन—प्रकृति प्रथम अन्तरिक्षीय संरचना है। उसके पूर्व समय, दूरी और कारण व प्रभाव की कोई शृंखला नहीं थी और न ही स्थिर ऊर्जा में कोई कम्पन था।

3. कम होते तापक्रम—अन्तरिक्ष की रचना के समय उस समय का अत्यन्त उच्च तापक्रम अचानक ही बहुत कम हो गया था।

4. अन्तरिक्ष की कोख—अन्तरिक्ष का केन्द्र और उसके आस-पास का क्षेत्र।

5. अन्तरिक्षीय रेगिस्तान—बिना पदार्थ का (अभौतिकीय) अन्तरिक्ष।

6. प्रकृति के नियम—वे नियम, जिनका अनुपालन स्वयं प्रकृति भी करती है। ये अन्तरिक्षीय पिण्डों की रचना, सह-अस्तित्व, गति, कार्य-प्रणाली आदि एवं ऋतुओं, वातावरण आदि के मूल नियम हैं। उदाहरणार्थ—

(क) पारस्परिक सम्बद्धता के नियम;
(ख) सह-अस्तित्व के नियम;
(ग) स्वतन्त्र इच्छा प्रति नियतवाद के नियम;
(घ) सद्गुणों एवं अवगुणों के नियम;
(ङ) जैसा बोओगे, वैसा काटोगे का नियम;
(च) गुरुत्वाकर्षण के नियम;
(छ) प्राकृतिक तरंगों के नियम;
(ज) प्राकृतिक चयन के नियम;
(झ) अच्छाई और बुराई की समन्वयता के नियम;
(ञ) योग्यतम की उत्तरजीविता के नियम;
(ट) कम्पनों के नियम;
(ठ) प्राकृतिक न्याय के नियम;
(ड) जैविक विकास एवं चयन पद्धति के नियम;
(ढ) ऋतुओं के नियम; आदि।

7. सर्वोच्च स्तर का जीवित निर्माण—मनुष्य।

8. वृत्ताकार—एक वृत्त के रूप में बारम्बार अभिव्यक्ति होना।

9. मूल तत्त्वों—सभी धर्मों और मिथकों में जीवन के लिये इन पाँचों तत्त्वों का होना आवश्यक बताया गया है। विज्ञान, कम-से-कम, इससे असहमत नहीं है।

10. फ़ीनोटाइप—किसी जीव को बोध की जा सकने योग्य विशेषतायें।

11. जीनोम—जीनयुक्त क्रोमोज़ोम का समूह।

12. जीनोटाइप—किसी जीव का वास्तविक जेनेटिक सम्मिश्रण।

13. धनात्मक, ऋणात्मक और मध्यम बल—प्रकृति के प्रत्येक तथ्य अथवा घटना में तीन बल अथवा गुण होते हैं—धनात्मक (अच्छाई का गुण), ऋणात्मक (बुराई का गुण) तथा मध्यम (परिणामी गुण)। खनिज, वनस्पति और जन्तु जगत भी प्राकृतिक तथ्य अथवा घटनायें हैं, अतः इनमें भी ये तीनों बल अथवा गुण हैं।

14. फ़्लोयम और ज़ाइलम—विकसित पौधों और वृक्षो के तनों, शाखाओं आदि में विद्यमान नलियाँ जो क्रमशः भोजन और जल की आपूर्ति का संचारण करती हैं।

15. बलों का सन्तुलन—प्रत्येक जीवित कोशिका में प्रवाहित होने वाली विभिन्न प्रकार की अभौतिक धाराओं के कारण विभिन्न बल उत्पन्न होते हैं। इनमें सन्तुलन बनाए रखने के कारण कोशिका जीवित रहती है।

16. आन्तरिक दुनिया—मानव शरीर के भीतर का सब कुछ।

17. बाहरी दुनिया—मानव-शरीर के बाहर का सब कुछ।

18. चयापचयता—जीवित कोशिकाओं में होने वाले रासायनिक परिवर्तन जिनसे जीवन की प्रक्रिया बनाये रखने हेतु ऊर्जा मिलती है।

19. प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्त—निर्णय दिये जाने के पूर्व सभी पक्षों को सुने जाने का अवसर देने का अधिकार और सभी पक्षों के प्रति न्यायाधीश का निष्पक्षतापूर्ण व्यवहार प्राकृतिक न्याय के दो मूल सिद्धान्त हैं।

20. समुचित एवं पर्याप्त अवसर—प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्त के अनुसार पक्षकारों को अपना पक्ष प्रस्तुत करने का पर्याप्त अवसर दिया जाता है।

21. पक्षपात—किसी का पक्ष न लेना प्राकृतिक न्याय का सिद्धान्त है।

22. आन्तरिक प्राकृतिक नियम—स्वस्थ मानव-शरीर के वे नियम जो मनुष्य के सभी कार्यों एवं क्रियाओं को सुव्यवस्थित रूप से संचालित एवं नियन्त्रित करते हैं।

23. ऋणात्मकता—बुराई; अन्तरिक्षीय व्यवस्था को विध्वंस करना।

24. धनात्मकता—अच्छाई; अन्तरिक्षीय व्यवस्था को निर्मित करना।

25. आन्तरिक हो अथवा बाह्य—मानव-शरीर के भीतर अथवा बाहर सम्पूर्ण अन्तरिक्ष में।

26. तन्त्रिका—विन्यास का विकास—स्नायु तन्त्र का विकास अधिक विकसित प्राणियों में शीघ्रता से हुआ।

27. चयन की आवश्यकता—जीवों में अपने वातावरण से अपनी सुविधा के अनुसार विशेषताओं का चयन करने की योग्यता होती है। यह योग्यता कभी-कभी

प्राकृतिक आवश्यकताओं के नियन्त्रण में भी कार्य करती है।

28. प्राकृतिक संकेत और चिह्न—प्रकृति में विद्यमान तथा स्वयं प्रकृति द्वारा अपनी कार्य-प्रणाली नियन्त्रित करने हेतु अपनाये गये संकेत और चिह्न।

29. पराचेतना का स्तर—धनात्मक रूप से, संवेदन के सर्वोच्च अंश से भी परे, (परन्तु असंवेदन नहीं)।

30. आन्तरिक नियमों—मानव-शरीर की आन्तरिक क्रियाओं को नियन्त्रित करने वाले नियम।

31. चलयक्ष विमान—वायु से भारी वायुयान जो पंखों के ऊपर-नीचे गतिशील होने से चलता है।

32. प्राकृतिक चयन—जीवों की वातावरण से प्राकृतिक रूप से चयन करने की विशेषता।

33. योग्यतम की उत्तर जीविता—चार्ल्स-डार्विन का सिद्धान्त कि प्राकृतिक संघर्ष में योग्यतम ही उत्तरजीवी होगा।

34. एडरीनलिन—वाहिनीहीन ग्रन्थि, एडरीनलिन, से स्रावित एक महत्त्वपूर्ण स्राव जो शरीर की विभिन्न अभिक्रियाओं को नियन्त्रित करने में सहायक होता है।

35. अलसर—आन्तरिक अथवा बाह्य शरीर पर बना खुला फोड़ा जिसमें कभी-कभी मवाद बन जाता है।

36. स्नायुरोग—स्नायु-तन्त्र की कुव्यवस्थाओं से शारीरिक क्रियाओं में हुई अव्यवस्था।

37. अति तनाव—सर्वाधिक भयानक अप्राकृतिक कुव्यवस्था जो वर्तमान सांसारिक व्यवस्थाओं की देन है।

38. अनिद्रा-रोग—नींद न आने का रोग जो मेरे विचार से शरीर की अन्तःतरंगों में कुव्यवस्था उत्पन्न हो जाने से होता है।

39. गठिया—शरीर में हड्डियों के सन्धि-स्थल में होने वाला कष्ट।

40. मधुमेह—चीनी से सम्बन्धित एक शारीरिक रोग।

41. प्राकृतिक व्यवस्था में उन्नति करना अच्छाई है, उसमें अवनति करना बुराई है—वर्तमान प्राकृतिक व्यवस्था में मनुष्य यदि अपने कार्यों, विचारों, इच्छाओं आदि के द्वारा उसकी उन्नति के लिये योगदान देता है तो यह अच्छाई है; यदि वह उसकी अवनति के लिये योगदान देता है तो यह बुराई के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है।

42. चाँद पर ऑक्सीजन बनाने—अन्तरिक्ष में भेजे गये उपग्रह आदि पर्याप्त ईंधन के अभाव में अधिक दूर नहीं जा पाते हैं, अतः चाँद पर ईंधन का गोदाम बनाये रखने हेतु वहाँ ऑक्सीजन का निर्माण करने का प्रयास किया जा रहा है।

43. इल्मेनाइट—चाँद के भूपृष्ठ में प्रचुर मात्रा में पाया जाने वाला ऑक्सीजन

का धातुक।

44. मेन्सरिया—मानस की स्थिति; अपराध शास्त्र में इसका अर्थ दोषी मानस की स्थिति के सन्दर्भ में लिया जाता है।

45. क्रेस्कोग्राफ़—पौधों की वृद्धि से सम्बन्धित अभिक्रियाओं का निरीक्षण करने का यन्त्र।

46. भूअनुवर्तन—भूमि की ओर गति करने की विशेषता।

47. जल अनुवर्तन—जल की ओर गति करने की विशेषता।

48. प्रकाश अनुवर्तन—प्रकाश की ओर गति करने की विशेषता।

49. ठोस अनुवर्तन—ठोस पदार्थ या स्थिर स्तर की ओर गति करने की विशेषता।

50. प्रतांग—पत्तियों का उन स्प्रिंगनुमा धागों की संरचना में हुआ रूपान्तरण जिनसे बेलें आदि ऊपर बढ़ने में सहायता प्राप्त करती हैं।

51. पॉलीग्राफ़—विभिन्न प्रकार के लगातार हो रहे स्पन्दनों को अंकित करने का यन्त्र।

52. उत्तरी ध्रुव—चुम्बक के सूक्ष्मतम रूप में भी उत्तरी और दक्षिणी दोनों ध्रुव होते हैं।

53. अन्ध तत्त्व—अन्तरिक्ष में पाया जाने वाला तथाकथित रूप से मृत रहस्यात्मक पदार्थ।

54. निर्जलन—शरीर में जल की कमी हो जाना।

55. जलोदर—उदर में जल भर जाने का रोग।

56. विध्वंसात्मक प्राकृतिक घटनायें—प्रलय, सूखा, ज्वालामुखी का विस्फोट, भूकम्प, बाढ़ आदि।

57. अन्तरिक्षीय मेन्सरिया—प्रकृति के दोषी मानस की स्थिति।

अध्याय दो

1. अन्तरिक्षीय केन्द्र—अन्तरिक्ष का केन्द्र; वह बिन्दु जहाँ अन्तरिक्ष के निर्माण के पूर्व सम्पूर्ण स्थितिज अकम्पित ऊर्जा सकेन्द्रित थी।

2. पराचुम्बकत्व—मूल ऊर्जा चुम्बकत्व की विशेषताओं से भी परे थी।

3. अपकेन्द्रीय और अभिकेन्द्रीय—अन्तरिक्ष का निर्माण होने पर, और उसके उपरान्त, ऊर्जा का परिवर्तन केन्द्र की ऊर्जा से परे नये प्रारूपों में तथा केन्द्र की ऊर्जा की ओर पुराने प्रारूपों में, दोनों ही प्रकार से हुआ—और अभी भी हो रहा है।

4. जैविक तरंगें—वैज्ञानिकों ने जीवित कोशिका में पाये जाने वाले सभी तत्त्वों, रासायनों, सम्मिश्रण आदि को यथोचित मात्रा, अनुपात, तापक्रम एवं दाब पर मिलाकर जीवन की संरचना करने का बारम्बार असफ़ल प्रयास किया है। पदार्थ नहीं

वरन् कुछ विशिष्ट तरंगों का विशिष्ट संयोग ही जीवनत्व को कारित एवं नियन्त्रित करता है।

5. *अन्तरिक्षीय निर्वात*—अभौतिक अन्तरिक्ष, जहाँ पदार्थ का कोई भी प्रारूप विद्यमान नहीं है।

6. *अन्तरिक्षीय तनाव*—अन्तरिक्षीय सूजन; सभी अन्तरिक्षीय पिण्डों के बीच की दूरियों का पारस्परिक सन्तुलन।

7. *रसाकर्षण*—दो विभिन्न रूप से सान्द्रित द्रव्यों का एक झिल्ली के माध्यम से मिश्रण, जब तक पूरे घोल का सान्द्रण एक न हो जाये।

8. *न्यूरेक्सिस*—मानव मस्तिष्क एवं कशेरूक-दण्ड का सन्धि-स्थल।

9. *विद्युत धाराओं के सात गतिशील चक्र*—शरीर के भीतर विद्यमान विद्युत चुम्बकीय/विद्युत रासायनिक धाराओं के वे चक्र जिनके माध्यम से ऊर्जा शरीर में गतिमान होती है तथा विभिन्न आन्तरिक एवं बाह्य ऐक्छिक व अनैक्छिक कार्यों का संचालन करती है।

10. *शरीर का चुम्बकत्व*—जहाँ विद्युत है, वहाँ चुम्बकत्व भी है।

11. *आन्तरिक दुनिया*—हमारे शरीर के भीतर की दुनिया।

12. *मनोदैहिक*—किसी व्यक्ति द्वारा मानसिक संघर्षों के परिणामस्वरूप अथवा शारीरिक एवं मानसिक लक्षणों के किये गये अनुभव।

13. *मायोग्राफ़*—माँस-पेशियों की गतिविधियों और कार्यों को अंकित करने का यन्त्र।

14. *इलेक्ट्रोकार्डियोग्राफ़*—हृदय स्पन्दन के कारण हुई विद्युतीय क्षमताओं के परिवर्तनों को अंकित करने का यन्त्र।

15. *इलेक्ट्रोएन्सेफ़ेलोग्राफ़*—मस्तिष्क तरंगों को अंकित करने वाला यन्त्र।

16. *मस्तिष्क तरंगें*—मानव मस्तिष्क से उत्सर्जित विद्युत तरंगें।

17. *स्तर*—कार्य, मूल, इच्छा, विचार, भावना, अनुभूति आदि के स्तर।

18. *काल्पनिक अपराध*—कल्पना के स्तर पर किये गये अपराध।

19. *'रसाकर्षण' दाब*—यह दाब तरंगों के सान्द्रण एवं भिन्नता के कारण उत्पन्न होता है—अतः 'रसाकर्षण' दाब।

20. *प्रधान अपराध तरंगें*—किसी अपराध विशेष से सम्बन्धित अपराध तरंगों का समूह।

21. *सहायक अपराध तरंगें*—प्रधान अपराध तरंगों के प्रारूप में समानता परन्तु अंश में भिन्नता रखती हुई वे अपराध तरंगें जो प्रधान तरंगों के सान्निध्य में यात्रा करती हैं।

22. *प्रधान तरंगों के प्रभावित हुए बिना*—कभी-कभी अन्तरिक्ष में यात्रा कर रही कई अपराध तरंगों के समूह में से केवल सहायक तरंगें ही आपराधिक एन्टीना

को प्रभावित करती हैं तथा शेष समूह बिना प्रभाव डाले यात्रा करता रहता है।

23. भेद्य अकम्पायमान आपराधिक आत्मा—वह आत्मा जिसके आपराधिक प्रवृत्ति के मण्डल में अपराधता के ढीले बन्धन होते हैं।

24. होमियोपैथी की दवा—होमियोपैथी में न्यूनतम क्षमता की दवा सर्वाधिक शक्तिशाली होती है।

25. पूर्ण अपराध तरंगें—प्रत्येक अपराध तरंग में धनात्मकता का कुछ-न-कुछ अंश अवश्य होता है।

26. अपराधता का आवेश—शरीर में विद्यमान सम्पूर्ण अपराधता।

27. क्राइमोग्राफ़—जब एलेक्ट्रोएनुसेफ़ेलोग्राफ़ का आविष्कार हो चुका है तो क्या मानव-शरीर में यात्रा कर रही आपराधिक तरंगों को पकड़कर अंकित करने के यन्त्र के आविष्कार में कोई विलम्ब है ?

अध्याय तीन

1. अन्तरिक्षीय आँख—मनुष्य को आँखें इसलिये प्राप्त हुईं क्योंकि प्रकृति में भी बोध करने की—यद्यपि अपने स्तर पर ही—क्षमता आरम्भ से ही थी, और अभी भी है।

2. अन्तरिक्षीय एन्टीना—दूरदर्शन एन्टीना के समान प्रकृति के पास सर्वप्रथम निर्मित एन्टीना है—यद्यपि उसका अपना प्रकार एवं गुण है—जो सम्पूर्ण अन्तरिक्ष में फैला हुआ है।

3. गतिशील—अन्तरिक्षीय एन्टीना स्थिर न होकर सदैव गतिशील रहता है।

4. संज्ञानात्मक योग्यतायें—मनुष्य की संज्ञान एवं बोध से सम्बन्धित योग्यता।

5. सेरीब्रल कॉर्टेक्स—सेरीब्रम के पदार्थ की बाह्य पर्त जिसमें विकसित स्नायु तन्त्र का अधिकतम अंश होता है।

6. विद्युत चुम्बकीय सम्मिश्रण—मानव-शरीर में विद्यमान विद्युत एवं चुम्बकत्व के कारण प्रत्येक मनुष्य में एक विशिष्ट विद्युत चुम्बकीय संयोग अथवा सम्मिश्रण होता है।

7. आन्तरिक और शाश्वत अनुभव—पिछले अनुभवों के आधार पर हुई आन्तरिक प्रतिक्रियाओं के कारण हुए अनुभव आन्तरिक तथा व्यक्ति पर स्थाई प्रभाव डालने वाले अनुभव शाश्वत होते हैं।

8. आन्तरिक और बाह्य तरंगें—क्रमशः शरीर के भीतर और बाहर की तरंगें।

9. सूचना पथ—स्नायुतन्त्र के वे भाग जिनके माध्यम से सन्देश शरीर में एक अंग से दूसरे अंग में यात्रा करते हैं।

10. अनुबोधक गुणक—पिछले सभी अनुभवों का संगठित रूप।

11. न्यूरॉन—संवेदी-उपतन्त्रिकायें जो स्नायु-कोशिकाओं से अति सूक्ष्म धागों

के रूप में निकली रहती हैं।

12. जीवद्रव्य—जीवित कोशिकाओं में पाया जाने वाला सुव्यवस्थित जीवित पदार्थ।

13. डाई ऑक्सीराइबो न्यूक्लिक एसिड—जीन्स का मुख्य एवं मूल अवयव।

14. वैज्ञानिक अवकाश—वैज्ञानिक आविष्कारों, खोज, शोध आदि का कुछ समय हेतु स्थगन अथवा विलम्बन।

15. सामान्य रूप से स्वीकृत शाश्वत बोध—जैसे यदि कोई व्यक्ति सिर में पीड़ा होना बताये तो दूसरे समझ जायेंगे कि वह क्या कह रहा है।

16. वंशागत सामूहिक चेतना—जैसे "वन की आग भयानक होती है", यह तथ्य चैतन्य स्तर पर सभी जानते हैं चाहे उनमें से अधिकांश ने उसका प्रत्यक्ष अनुभव न भी किया हो।

17. सेरीब्रम के टेम्पोरल लोब—मस्तिष्क का अग्र भाग।

18. आन्तरिक अपराध तरंगें—शरीर में यात्रा कर रही अपराध तरंगें।

19. आपराधिक सन्तुलन—अपराधता की समन्वयता का स्तर।

20. आन्तरिक वृद्धि—यह सम्भव है कि किसी व्यक्ति का आपराधिक एन्टीना अचेतन स्तर पर शनैः-शनैः अंकुरित हो रहा हो और उस व्यक्ति को उसकी जानकारी न हो।

21. पर्याप्त अनुकूलन—यथेष्ट क्षमता का बारम्बार प्रहार होने पर एन्टीना का अपराधता के प्रति अनुकूल हो जाना।

अध्याय चार

1. प्रारम्भिक पूर्ण—अन्तरिक्ष की रचना के पूर्व एक बिन्दु पर सान्द्रित स्थिर अनिर्मित ऊर्जा।

2. पराप्राकृतिक ऊर्जा—प्रकृति में पाई जाने वाली ऊर्जा से परे विद्यमान ऊर्जा।

3. सर्वोच्च विवेक—किसी भी कृति अथवा संरचना से परे ऊर्जा; यद्यपि उसमें सभी प्रकार की रचनाओं को निर्मित करने की सभी योग्यतायें एवं क्षमतायें हैं; परम आत्मा; सर्वोच्च आत्मा।

4. चौरासी लाख पड़ावों—इस ग्रह पर कुल चौरासी लाख जीवित प्राणियों व वनस्पतियों के प्रारूप/प्रकार हैं अथवा रहे हैं।

5. यात्रा—अनिर्मित ऊर्जा ने मनुष्य का आकार ग्रहण करने के पूर्व वास्तव में ही इतनी लम्बी यात्रा की है।

6. रिक्तिका—जीवित कोशिका में एक स्पष्ट झिल्ली से घिरा रिक्त स्थान।

7. मानव रिक्तिका—मानव-शरीर के भीतर का सामूहिक रिक्त स्थान।

8. सर्वशक्मिान ऊर्जा—प्रकृति के निर्माण के पूर्व की मूल ऊर्जा।

9. आन्तरिक दुनिया—मानव-शरीर के आन्तरिक और बाह्य सभी कार्यकलाप।

10. सरीसृप—वे प्राणी जो अपने पैर या अत्यन्त सूक्ष्म टाँगों पर रेंगते हैं—जैसे सर्प अथवा छिपकली।

11. उभयचर—वे जो भूमि पर एवं जल में दोनों जगह जीवित रह सकते हैं—जैसे मेंढक।

12. विवेक—आत्मा, स्थिर ऊर्जा अथवा पराचुम्बकत्व।

13. जीन्स की वर्णमाला—जीन्स का अधिकतम अंश निर्मित करने वाले चारों क्षारों की वर्णमाला जिनमं चीनी और फ़ास्फ़ेट का एक-एक अणु प्रलम्बित रहता है।

14. जीन्स के सन्देश—जीन्स द्वारा वहन की गयी सूचनायें।

15. जीन्स के शब्द—प्रत्येक सन्देशे अपने विशिष्ट शब्दों में अपने विशिष्ट प्रकार से गठित रहता है।

16. जीन्स का कोड—जीन्स द्वारा वहन की गयी विशिष्ट संकेत पद्धति।

17. जीन्स के वंशानुक्रम—जीन्स के माध्यम से एक वंश से दूसरे वंश में गयी विशिष्टतायें।

18. गुरुत्वाकर्षण का नियम—पदार्थों की एक-दूसरे को आकर्षित करने एवं एक-दूसरे के प्रति आकर्षित होने का नियम।

19. निराकार द्विभागीय क्रोमोज़ोम—प्रत्येक क्रोमोज़ोम में दो धागे होते हैं, इसलिये द्विभागीय, चूँकि प्रवृत्ति या मनोवेश साकार नहीं होते हैं, इसलिये निराकार।

अध्याय पाँच

1. प्रारम्भिक कम्पायमान इच्छा—विज्ञान की दृष्टि में, सृष्टि के आरम्भ में विस्फोट होने पर उत्पन्न हुआ जो प्रथम कम्पन सभी दिशाओं में अन्य कम्पनों में गुणित होता गया, उसे सभी धर्मों एवं मिथकों में इच्छा के रूप में वर्णित किया गया है।

2. गुणित होने की अन्तरिक्षीय इच्छा—प्रारम्भिक अन्तरिक्षीय कम्पनों से गुणित होने की प्रवृत्ति थी; और आज भी है।

3. द्विगुणी—उच्चता और निम्नता, धनात्मकता और ऋणात्मकता, अच्छाई और बुराई, दोनों ही प्रकार की विशिष्टतायें लिये।

4. निराकार घटनाओं को प्रदर्शित करने की छुपी हुई योग्यता—प्रकृति की आरम्भिक रचनाओं में सभी इच्छायें, अनुभूतियाँ, भावनायें आदि छुपे हुए प्रारूपों में थीं तथा धीरे-धीरे वे अत्यन्त ही विकसित प्राणियों में स्वयं को प्रदर्शित करने में सफ़ल हुईं।

5. गतिज व्यवस्था—प्रदर्शित होती हुई।

6. विस्फोट—वैज्ञानिकों के मतानुसार, एक बिन्दु पर सान्द्रित मूल ऊर्जा में

हुआ विस्फोट ही अन्तरिक्ष की रचना का तुरन्त कारण था।

7. अन्तरिक्षीय वंशानुक्रम—अन्तरिक्षीय घटनाओं और तथ्यों की समयानुसार घटित अथवा अभिव्यक्त होने की वंशावलि।

8. सूक्ष्मतम निराकार—इच्छायें, अनुभूतियाँ, भावनायें आदि।

9. व्यस्क—संश्लेषण का गुण।

10. पिता एवं बालक—क्रमशः स्थिरता एवं अस्थिरता।

11. स्वतन्त्र—अधिकतम रूप से अनिर्भर।

12. प्रेरित—बाह्य कारकों पर निर्भर।

13. आन्तरिक धनात्मक निरोधी प्रति-प्रतिक्रिया—स्नायुतन्त्र की निरोधी कोशिकायें किसी अनुभूति आदि को बढ़ने से रोकती हैं; अतः इनके द्वारा अनुभूति आदि पर धनात्मक प्रकृति की रोक लगाती प्रति-प्रतिक्रिया।

14. आन्तरिक ऋणात्मक उद्दीपक प्रतिक्रिया—स्नायु तन्त्र की उद्दीपक कोशिकाओं द्वारा किसी अनुभूति आदि को ऋणात्मक रूप से उद्दीप्त करती हुई प्रतिक्रिया।

15. लघुवर्ग तथा दीर्घवर्ग—परमाणु की नाभि को बाँधने वाला सशक्त बल (1 व्यवस्था का) तथा निर्बल बल (10^{-10} व्यवस्था का) लघुवर्ग के हैं; परमाणु के प्रोटान तथा इलेक्ट्रान को बाँधने वाला विद्युत चुम्बकीय बल (10^{-13} व्यवस्था का) तथा गुरुत्वाकर्षण बल (10^{-40} व्यवस्था का) दीर्घ वर्ग के हैं।

16. किसी भी स्तर पर—अवचेतना से पराचेतना तक के स्तर।

17. घर्षण—ध्वनि की कोई भी तरंगें बिना घर्षण के उत्पन्न नहीं हो सकती हैं।

18. अनुबन्धित—अपराध तरंगों द्वारा किया गया प्रेरण मनुष्य को पूर्णतः अपने अनुकूल और अनुरूप भी कर सकता है।

19. उत्प्रेरक माध्यम—वे कारक जो किसी प्रतिक्रिया की गति और तीव्रता में वृद्धि करते हैं परन्तु उसे मूल रूप से आरम्भ नहीं कर सकते।

20. स्तर—मनुष्य अपराधता का बोध चेतना के स्तर पर करते हुए आपराधिक कार्य करने पर दोषी तथा अचेतना के स्तर पर करते हुए आपराधिक कार्य करने पर निर्दोष होता है।

21. प्रतिवर्ती क्रिया—स्नायु प्रेरण होने पर हुई अनैक्छिक प्रतिक्रिया।

अध्याय छः

1. प्रतिवर्ती-प्रक्रिया—सर्वोच्च आत्मा से मनुष्य की आत्मा तक ऊर्जा विभिन्न प्रकार के परिवर्तनों सहित यात्रा करती है; इसी प्रकार से ऊर्जा के परिवर्तन की प्रतिवर्ती यात्रा मनुष्य की आत्मा से सर्वोच्च आत्मा तक होती है।

2. द्विभाजन के सार्वभौम सिद्धान्त—प्रकृति की प्रत्येक घटना में धनात्मकता और ऋणात्मकता दोनों का ही अंश है, अतः प्रकृति में पूर्णता किसी भी रूप में कहीं

भी नहीं है।

3. अभिकेन्द्रित प्रतिवर्ती परिवर्तन—मनुष्य की आत्मा से सर्वोच्च आत्मा तक हुए परिवर्तन।

4. अपकेन्द्रित संरचना—सर्वोच्च आत्मा से मनुष्य की आत्मा तक की यात्रा।

5. विलीन—प्रत्येक निर्मित ऊर्जा की यात्रा अन्त में सर्वोच्च आत्मा में विलीन होने पर ही समाप्त होती है। तभी इस ऊर्जा में कोई कम्पन नहीं होता तथा वह पूर्णता प्राप्त करती है।

6. मेलानिन वर्णक—त्वचा का वह वर्णक जो उसका रंग निर्धारित करता है।

7. प्रतिघात—आपराधिक कार्य से अपराधकर्ता भी प्रभावित होता है क्योंकि उसके विद्युत चुम्बकीय संयोग में अन्तरिक्षीय विद्युत चुम्बकीय संयोग की तुलना में निश्चित रूप से अवनति होती है।

8. अपराध संश्लेषण—मूल अपराध तरंगें अत्यन्त ही साधारण प्रकृति की थीं—मूल अपराध की प्रकृति भी साधारण थी। धीरे-धीरे अपराध तरंगों और उसके समरूप अन्य तरंगों के बीच अन्तःक्रियायें होने से जटिल संयोगों की अपराध तरंगें संश्लेषित हुईं तथा अपराध भी जटिल हो गये। समाज में नये अपराधों का भी जन्म, उद्भव एवं विकास हुआ।

9. ग्रेशम का मुद्रा प्रचलन का सिद्धान्त—बुरी मुद्रा में अच्छी मुद्रा को स्थानापन्न करने की प्रवृत्ति होती है।

10. डी. एन. ए.—डाई ऑक्सी राइबो न्यूक्लिक एसिड।

11. मोलाश—फ़िलिस्तीन का एक देवता जो बच्चों की बलि पाकर प्रसन्न होता है।

12. कोणीय दोष—मूल कारण में दोष बिन्दुमात्र ही हो सकता है परन्तु अन्तिम परिणाम का वास्तविक दोष कोण की दोनों भुजाओं के दूरस्थ बिन्दुओं के बीच की दूरी जितना होगा।

13. प्रतिवर्ती प्रहार—जो स्वयं दूसरों के लिये करेंगे, वही दूसरों से पायेंगे।

14. अधिकतम की प्रसन्नता का सिद्धान्त—विधि के निर्माण में विधि शास्त्रियों ने इस सिद्धान्त को भी आधार बनाया जाना बताया है।

15. संचित किये जाने योग्य कार्य—आज के कारण, जिनके प्रभाव आने वाले कल के लिये संचित हो जायेंगे।

16. भाग्य से जुड़े तथा संचित कर्म—वंशानुगत कर्म, जिन्हें प्रकृति आदि के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति धारण करता है; बीते हुए कल के प्रभाव जो सामान्यतः आज किये जाने वाले कार्यों के कारण होते हैं।

17. तारे प्रेरित करते हैं परन्तु विवश नहीं करते—मेसोपोटामियाँ के महान दार्शनिक एवं खगोलशास्त्री टॉलेमी का कथन।

18. विशेषक—व्यक्तित्व आदि से सम्बन्धित विशिष्टतायें।

19. अप्राकृतिक संलक्षण—अपराधी प्राकृतिक नियमों का भी उल्लंघन करते हैं, इसलिये उनके व्यक्तित्व में अप्राकृतिक संलक्षण भी होते हैं।

20. विशेषकों के पृथक्कीकरण का नियम—विशेषक स्पष्ट कणों अथवा अवयवों के रूप में रहते हैं; वे न तो दूषित होते हैं और न ही एक दूसरे से मिश्रित होते हैं तथा आगामी वंशों में अपने आपको अलग-अलग प्रारूप में प्रदर्शित करते हैं।

21. स्वधारण के सिद्धान्त—स्वयं द्वारा किये गये बोध एवं उस बोध के विश्लेषण के आधार पर स्वयं के बारे में किसी व्यक्ति द्वारा बनाई गयी धारणा।

22. टहनी—किसी भी जीव के समान ही मनुष्य की भी दो मूल प्राकृतिक आवश्यकतायें हैं—भूख और सेक्स (अथवा प्रजजन)—अतः टहनी।

अध्याय सात

1. यथापूर्व स्थिति—विस्फोट से पूर्व की स्थिति, जब ऊर्जा शान्तिपूर्वक विश्राम की स्थिति में थी तथा किसी भी प्रकार की कोई भी रचना निर्मित नहीं हुई थी और न ही ऊर्जा में कोई कम्पन हुआ था।

2. परिणामवादी निर्वाण—वह निर्वाण अथवा मुक्ति जिसकी प्राप्ति सम्भव हो सके।

3. सम्पूर्ण निर्वाण—जितना अपराध प्रकृति में है, मानवीय समाज में उतना भी न रहे।

4. प्रकाश संश्लेषण—हरे पौधों द्वारा सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में अपना भोजन बनाने की प्रक्रिया।

5. शरीर के भीतर अपराधता का विकास होना अवश्यंभावी है—लगभग प्रत्येक व्यक्ति की आपराधिक प्रवृत्ति के मण्डल में कम्पन होते हैं जिससे अपराध तरंगें उत्सर्जित होती हैं क्योंकि कुछ व्यक्तियों के अतिरिक्त कोई भी पूर्ण नहीं होता।

6. अच्छाई और बुराई का अन्तरिक्षीय सन्तुलन बना रहे—प्रकृति ने अपने द्वारा किये गये अपराधों और अपराधता का सन्तुलन बनाये रखा है परन्तु मनुष्य ऐसा करने में असफ़ल रहा है। चूँकि मनुष्य, मानवीय समाज और प्रकृति एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं, मानवीय समाज में बढ़ रहे अपराध अन्तरिक्ष में अच्छाई और बुराई के सन्तुलन को असन्तुलित कर रहे हैं; इससे प्राकृतिक संकट एवं विपत्तियों में भी वृद्धि हो रही है क्योंकि मनुष्य प्रकृति के नियमों का भी उल्लंघन कर रहा है।

7. हिपेटाइटिस बी—पीलिया रोग कारित करने वाला वाइरस।

8. आनुवांशिक अभियान्त्रिकी—विज्ञान की वह शाखा जिसमें जीन्स की काट-छाँट करते हैं।

9. आत्मा-विज्ञान—जब मानस के वैज्ञानिक अध्ययन हेतु मनोविज्ञान विभाग

की स्थापना हो चुकी है तो क्या आत्मा के वैज्ञानिक अध्ययन हेतु आत्मा-विज्ञान विभाग की स्थापना में विलम्ब होगा ?

10. प्राकृतिक वैज्ञानिक शुद्धीकरण—योग, आनुवांशिक अभियान्त्रिकी, ऊतक संस्कृति आदि की वैज्ञानिक प्रक्रियाओं से आत्मा का प्राकृतिक रूप से शुद्धीकरण।

11. प्राकृतिक-शैक्षिक—शिक्षा प्रकृति के अनुकूल होनी चाहिए।

12. प्राकृतिक-धार्मिक प्रवचनों—धार्मिक प्रवचन प्रकृति के अनुकूल होने चाहिए।

13. ल्यूकोडर्मा—त्वचा के इस रोग की भाँति आपराधिक मस्तिष्क की प्रकृति भी परिवर्तित की जा सकती है।

14. निरोधक कोशिकायें—हमारे स्नायुतन्त्र में दो प्रकार की विशेष कोशिकायें पाई जाती हैं—निरोधक और उद्दीपक; प्रथम प्रकार की कोशिकायें किसी प्रतिक्रिया को रोकती हैं तथा दूसरे प्रकार की उसे उद्दीप्त करती हैं (जैसे भूख की प्रतिक्रिया)।

15. उद्दीप्त गतिशीलता—उद्दीपक कोशिकाओं के कार्यकलापों से ऊर्जा की उत्पन्न हुई वह गति जो प्रतिक्रिया को उद्दीप्त करती है (जैसे भूख की प्रतिक्रिया)।

16. निरोधक प्रतिक्रिया—आपराधिक भावनाओं, इच्छाओं और अनुभूतियों को रोकने की प्रतिक्रिया।

17. एक्यूप्रेशर पद्धति—शरीर के कुछ स्थानों, बिन्दुओं व स्थलों को दबाकर चिकित्सक विभिन्न रोगों को दूर करते हैं तथा कई मानसिक स्थितियाँ आदि नियन्त्रित करते हैं।

18. बाह्य एवं आन्तरिक—मनुष्य जैसा भीतर से है, वैसा ही वह बाहर से भी व्यवहार करे।

19. व्यस्तता पद्धति—अपराध की ओर झुकाव रखने वाले व्यक्ति को विभिन्न अनापराधिक कार्यों में व्यस्त रखना।

20. बिना अंगुली वाला मनुष्य वधस्थल से इसलिये वापस आया—एक बिना अंगुली वाला व्यक्ति अपनी इसी आधार पर भर्त्सना किया करता था कि वह अपूर्ण है। माँसाहारी मानवों द्वारा पकड़े जाने पर वधस्थल पर उसकी बलि देने के समय यह पाया गया कि एक अंगुली न होने के कारण उसकी बलि पूर्ण नहीं मानी जायेगी और उसे छोड़ दिया गया।

21. बोध से क्रिया की शृंखला—बोध-विचार-अनुभूति-इच्छा-आशय-तैयारी-प्रयत्न और क्रिया तक की शृंखला।

22. आनुवांशिक स्तर—आज हम जो विचार मस्तिष्क में लायेंगे वह हमारे जीन्स में कूटबद्ध हो जायेगा और हमारे आगामी वंशों में हस्तानान्तरित होगा।

23. आनुवांशिक शिल्प—जीन्स के निर्माण का शिल्प।

24. जीन्स का धारणता का गुण—जीन्स में लचीलापन होने के कारण वे यदि

कोई प्रेरण उन्हें बारम्बार निरन्तर दिया जा रहा है तो उसे धारण कर सकते हैं।

25. विध्वंसात्मक स्तर के विशेषक—जीन्स की मनुष्य को अपराध कारित करने के लिये प्रेरित करने वाली विशिष्टतायें।

26. ऊतक संस्कृति—क्रासब्रीड के द्वारा नई विशिष्टताओं को उत्पन्न करने की प्रक्रिया

27. सुजनन-विज्ञान—वंशागत गुणों में उन्नति करने का विज्ञान।

28. $अ^2 : ब^2 : 2 अ ब$—हार्डी-वेनबर्ग के आनुवांशिकता के नियम पर आधारित फ़ार्मूला जो विभिन्न विशेषकों के आगामी वंशों में हस्तानान्तरण से सम्बन्धित है।

29. विच्छेद—स्थाई विच्छेद; यह सम्भव ही नहीं है क्योंकि प्रकृति में सभी घटनायें सह-सम्बन्धित हैं।

30. आर्कमिडीज़—ग्रीक दार्शनिक जिसने पानी भरे टब में घुसने पर आपेक्षिक घनत्व के सिद्धान्त की खोज की।

31. सिकन्दर—ग्रीस का राजा जिसने सम्पूर्ण विश्व को जीतने की इच्छा रखते हुए ऐसा प्रयास भी किया।

32. विद्युतचुम्बकीय उत्पादक—हृदय।

33. अन्तरिक्षीय कर्तव्य—विचार से क्रिया तक प्रकृति के समीपतम प्राकृतिक रूप से रहना तथा प्राकृतिक नियमों का अनुपालन करना।

34. अपराधता की टिकटी—बिना विचारे दूसरे पर आरोप लगाना अपराधता है।

35. प्राकृतिक भोजन—हमारी भोजन नलिका की हमारे शरीर के अनुपात में लम्बाई और हमारे दाँतों की आकृति उन प्राणियों से मिलती है जिनका आहार केवल फल, शाक-सब्जी तथा अन्न ही है। अतः हमारे लिये केवल फल, शाक-सब्जी और अन्न ही प्राकृतिक भोजन है।

36. फ़ादर वाल्श की मुस्कुराहट—फ़ादर वाल्श, मिशनरी, उस सिपाही के सामने मुस्कुराये जो संगीन से उनकी हत्या करने उनकी ओर दौड़ा आ रहा था। सिपाही इस अप्रत्याशित घटना से विस्मृत हो गया, और तब वह भी मुस्कुराया। बाद में फ़ादर जब वह स्थान छोड़ने के लिये अपना सामान लेने अपने कमरे पर पहुँचे तो उन्होंने अपना सामान बँधा हुआ पाया—उसी सिपाही द्वारा।

37. दूसरों का प्रकाश—एक विजय के बाद जब सिकन्दर वापस आ रहा था तो दार्शनिक दियोनीज़ से मिला जो एक पेड़ के नीचे लेटा हुआ था। औपचारिक बातों के बाद सिकन्दर ने उससे आग्रह किया कि वह विजित वस्तुओं में से जो चाहे ले ले। दियोनीज़ ने कुछ भी लेने से इन्कार कर दिया और उससे वह प्रकाश छोड़ देने को कहा जो सिकन्दर के सामने खड़े होने के कारण सूर्य की किरणों से उस तक नहीं पहुँच पा रहा था।

●●●



लेखक का संक्षिप्त परिचय

उच्चतर न्यायिक सेवा में कार्यरत, बहुमुखी प्रतिभाओं के धनी श्री प्रदीप कुमार का जन्म 3 अक्टूबर, 1953 को जनपद प्रतापगढ़, उत्तर प्रदेश में हुआ था। अपनी माता श्रीमती विमला सक्सेना एवं पिता न्यायमूर्ति श्री आर. के. सक्सेना से प्रेरणा प्राप्त करते हुए प्रदेश के कई जनपदों में प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त उन्होंने इलाहाबाद विश्व-विद्यालय से स्नातक एवं आगरा विश्व-विद्यालय से विधि-स्नातक की परीक्षायें क्रमशः वर्ष 1972 एवं 1975 में उत्तीर्ण कीं। वर्ष 1979 की उत्तर प्रदेश न्यायिक सेवा परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करने के उपरान्त उन्होंने जनपदीय न्यायालयों के अतिरिक्त कानूनी सहायता एवं परामर्श बोर्ड एवं विधि आयोग में प्रतिनियुक्ति के विभिन्न महत्त्वपूर्ण पदों पर भी कार्य किया। वर्तमान समय में वे इलाहाबाद उच्च न्यायालय, लखनऊ पीठ में संयुक्त निबन्धक के पद पर नियुक्त हैं।

स्वभाव से गम्भीर एवं चिन्तनशील प्रकृति के श्री कुमार विभिन्न रुचियों का व्यक्तित्व रखते हैं। अध्ययन व लेखन के अतिरिक्त उन्हें विभिन्न खेलों और संगीत में भी रुचि है। वे स्वयं भी खिलाड़ी और गायक हैं।

सभी धर्मों का समान आदर करने वाले प्रदीप जी का मानना है कि करने योग्य कर्म ही धर्म है। परमात्मा केवल सत् नहीं है; वह सत् भी है और असत् भी, क्योंकि वह पूर्ण है। अपराध का भाव प्रकृति से परे नहीं है। पृथ्वी पर वर्तमान अपराध के स्वरूप और प्रकृति में उसके रंग के बीच सम्बन्ध पर उनकी यह कृति तात्विक ही नहीं, रहस्यदर्शी भी है।

–पं. इन्दु प्रकाश मिश्र
ज्योतिष मार्तण्ड, महामहोपाध्याय